श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

परमात्मप्रकाश प्रवचन

चतुर्थ भाग

लेखक :—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

प्रकाशक :—

खेमचन्द जी जैन, सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

प्रथम संस्करण]
१०००

सन् १९६५

[मूल [illegible]
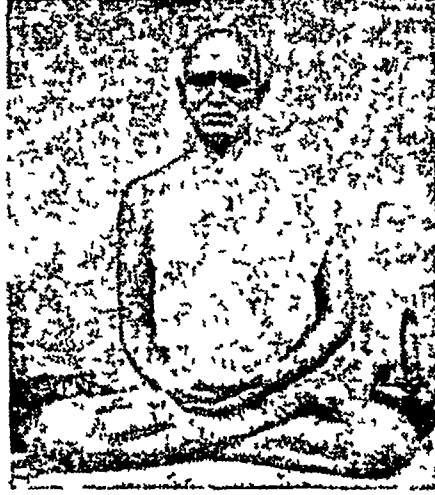
श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

परमात्मप्रकाश प्रवचन

चतुर्थ भाग

लेखकः—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

प्रकाशक —

खेमचन्द जैन, सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

(उ० प्र०)

प्रथम संस्करण 1,000] १९६५ [न्योछावर १)५०

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षक

(१) श्रीमान् लाला महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(२) श्रीमती फूलमाला जी, धर्मपत्नी श्री लाला महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ ।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावों की नामावली :—

(१) श्री भवरीलाल जी जैन पाण्डया, झूमरीतिलैया
(२) ,, ला० कृष्णचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(३) ,, सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्डया, झूमरीतिलैया
(४) ,, श्रीमती सोवती देवी जी जैन, गिरिडीह
(५) ,, ला० मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन, मुजफ्फरनगर
(६) ,, ला० प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी, मेरठ
(७) ,, ला० सलेखचन्द लालचन्द जी जैन, मुजफ्फरनगर
(८) ,, ला० दीपचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(९) ,, ला० बारूमल प्रेमचन्द जी जैन, मसूरी
(१०) ,, ला० बाबूराम मुरारीलाल जी जैन, ज्वालापुर
(११) ,, ला० केवलराम उग्रसैन जी जैन, जगाधरी
(१२) ,, सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन, सनावद
(१३) ,, ला० मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी, मुजफ्फरनगर
(१४) ,, श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन, देहरादून
(१५) ,, श्रीमान् ला० जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर मेरठ
(१६) ,, मंत्री जैन समाज, खण्डवा
(१७) ,, ला० बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन, तिस्सा
(१८) ,, बा० विशालचन्द जी जैन, आ० मजि०, सहारनपुर
(१९) ,, बा० हरीचन्द जी ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर, इटावा
(२०) श्रीमती प्रेम देवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैन संघी, जयपुर
(२१) श्रीमती धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालाल जी जैन, जियागंज
(२२) ,, मंत्राणी, जैन महिला समाज, गया
(२३) श्रीमान् सेठ सागरमल जी पाण्ड्या, गिरिडीह
(२४) ,, बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी, गिरिडीह
(२५) ,, बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी, गिरिडीह

(२६) श्री सेठ फूलचन्द ब्रजनाथ जी जैन, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर
(२७) ,, सेठ छदामीलाल जी जैन, फिरोजाबाद
(२८) ,, ला० सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ, बडौत
(२९) ,, सेठ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, गया
(३०) ,, बा० जीतमल शान्तिकुमार जी छाबडा, झूमरीतिलैया
(३१) श्रीमती धनवती देवी ध. प. स्व. ज्ञानचन्द जी जैन, इटावा
(३२) श्री दीपचंदजी ए० इंजीनियर, कानपुर
(३३) गोकुलचंद हरकचद जी गोधा, लालगोला
* (३४) ,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ
* (३५) ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या, जयपुर
* (३६) ,, बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ., सदर मेरठ
* (३७) ,, ला० मुन्नीलाल यादवराय जी जैन, सदर मेरठ
(३८) ,, ला० जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन, सहारनपुर
* (३९) ,, ला० नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस, रुडकी
× (४०) ,, ला० जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला
× (४१) ,, ला० बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन, शिमला
* (४२) श्रीमती शैलकुमारी जी, धर्मपत्नी, बाबू इन्द्रजीत जी वकील,
विरहन रोड, कानपुर।

नोट.—जिन नामोके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यता के कुछ रुपये आ गये हैं बाकी आने हैं तथा जिनके नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनके रुपये अभी नही आये, आने हैं। श्रीमती बसोबाई जी ध० प० सि० रतनचन्द जी जैन जबलपुरने संरक्षक-सदस्यता स्वीकार की है।

—:०*०:—

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

[१]
मैं वह हूं जो हैं भगवान्, जो मैं हू वह हैं भगवान् ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं राग वितान ॥

[२]
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥

[३]
सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

[४]
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥

[५]
होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥

अहिंसा धर्मकी जय !

परमात्मप्रकाश प्रवचन चतुर्थ भाग

इस पहिले अध्यायमें आत्मतत्त्वका वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्माके भदके रूपमें वर्णन हुआ था। अब इस ही वर्णनकी कुछ सम्बन्धित बातें बढ़ाकर उपसहार रूपमें कथन चलाते हैं। इस प्रकरणके अतमें एक यह बात आई थी कि यह आत्मा न पुण्यरूप है, न पापरूप है इत्यादि। तब यह प्रश्न होता है कि यदि यह आत्मा पुण्य आदिकरूप नहीं है तो फिर कैसा है? इस प्रश्न पर यहा उत्तर कह रहे हैं।

अप्पा सजमु सीलु तउ अप्पा दसणु णाणु।
अप्पा सासय मोक्ख पउ जाणतउ अप्पाणु ॥६३॥

यह आत्मा सयम रूप है, शीलरूप है, तपश्चरणरूप है, दर्शन और ज्ञानस्वरूप है और यही शाश्वत मोक्षका साधन स्थान है। हम पर या आप पर जो कुछ भी गुजरता है वह अपने परिणमन द्वारा ही अपनी परिणति गुजरती है। इस मुझ आत्मामे सभी अपनी-अपनी बातें सोचे कि यह जो कुछ भी सुख या दु ख रूप परिणमन होता है वह सब केवल अपनी कल्पना या विचारका फल है। किसी दूसरे पदार्थके किसी भी परिणमनके कारण मुझमें परिणमन नहीं होता है। हा, अशुद्ध अवस्थामें जब बाह्यदृष्टिकी आदत पड़ी हुई है, तो किसी भी बाह्यपदार्थको किसी भी रूपमें देखकर, मानकर मानी बातसे कल्पना बनाकर सुख अथवा दु ख हो जाता है। ऐसी स्थितिमें भी हमने जो कुछ किया वह अपने को ही किया। मै अपनेसे बाहर कुछ भी करनेमें समर्थन हीं हूं।

यह ससार जिसका बहुत बड़ा काल है और जितने भी सत् होते हैं वे सदा रहते हैं तथा परिणमते रहते हैं। हम किस-किस रूप और आगे परिणमेंगे? यह सब केवल मेरे परिणामों पर निर्भर है। हमारा परिणमन किसी दूसरेकी इच्छाके आधीन नहीं है और जब ससारमें रह रहे हैं और जब तक रहना पडेगा तब तक संकट ही सकट हैं। आनन्दका नाम नहीं हैं। मोहमे किसी बातका आनन्द मान लिया, मान लो, पर परमार्थसे किसी भी सयोगमें इस जीवको आनन्द नहीं है। आनन्दकी अटक तो तब हुआ करती है जब यह आत्मा अपने सहजस्वभावका स्पर्श न करले। यह आत्मा बिल्कुल अकेला है, एकस्वरूप है, इसमें किसीका प्रवेश नहीं है।

जब अन्तरमे मिथ्यात्त्वभाव बना है कि यह जीव मेरा है। बस इस मिथ्याभावसे ही सर्वसकट छा जाते हैं। परमार्थसे तो मेरा कुछ भी नहीं

है। ज्ञानी गृहस्थमें और तारीफ ही क्या हुआ करती है कि घरके इतने संकटोंके बीच रहकर भी सुख शान्ति मानता है। तो वह कौनसी कला है? वह कौनसी बूटी है? वह कला है सहजस्वरूपके परिचयकी। इस सहज स्वरूपके परिचयके कारण कैसा भी अनुकूल प्रतिकूल कुछ होता हो उस ज्ञानी गृहस्थमें इतना साहस है कि हो ले जो कुछ चाहे। जितना विपरीत, प्रतिकूल परिणमन जो भी होना हो, हो ले, क्या होगा? जो होगा वह सब पर पदार्थोंका ही परिणमन है। मेरेको वह छूता तक भी नहीं है। कदाचित् सब धन निकला जाता है तो निकल जाने दो, यह साहस अज्ञानी कायर नहीं करता है। पर ज्ञानी यह साहस करता है कि सर्व धन छिना जाता है तो छिन जाने दो। यह आत्मतत्त्व तो अपना स्वरूप है। इसका तो कोई विनाश नहीं है। यह सब समागम बिछुड़ा जाता है तो बिछुड़ जाने दो। यहां नहीं रहा दूसरी जगह चला गया। मैं तो जितना हू उतना ही रहूगा। किसीके संगसे यह कुछ बढ़ नहीं जाता और किन्हीके बिछुड़नेसे यह कुछ घट नहीं जाता। यह तो जो है सोई है।

अज्ञानी अपनी कल्पनासे अपनेमें अन्तर डालता है। ज्ञानी पुरुषके रहस्यकी क्या बात पूछनी, वह साहस कहांसे आया? अपने सहजस्वरूपके परिचयके कारण यह साहस प्रकट हुआ है। क्या होगा अधिकसे अधिक? लोग सब अपवाद करने लगेंगे, अपमान करने लगेंगे। करें, वह सब उनकी परिणति है। मुझसे वे अत्यन्त भिन्न हैं। उनकी परिणतिसे मुझपर कुछ नहीं गुजरता। आप अपनी कल्पनामें कठिनसे कठिन परिस्थितियोंका रूप रखलें—धनका न रहना, कुटुम्बका बिछुड़ जाना, आपत्तियोंका सामने आना, इस शरीरको ही कोई भेदने लगे, यहां तक की भी हालत हो तो आने दो समय। ऐसे समयमें ज्ञानी अपने साहसको संतुलित बना लेता है। जब तक बुखार नहीं आ रहा है तब तक ही डर है और जब बुखार आ जाता है, १०३ डिग्रीका भी बुखार हो तो देखो कितनी हिम्मत करके वह सह लेता है। क्योंकि आफत सामने आ ही तो गई।

भैया! कैसी भी परिस्थितियां उस ज्ञानीके सामने आएँ पर इतना साहस वह बना लेता है कि उन परिस्थितियोंमें भी वह अपने आत्माकी रक्षा कर सकता है। ज्ञानी बनो। धनी होने में आपका अधिकार नहीं है, वह तो भवितव्य है, योग है, उदय है और धनी होनेसे कोई बड़ा भी कहा जाये तो उससे कहीं ज्ञानका चमत्कार न बन जायेगा। धन तो बाह्य चीज है। आत्माकी निधि है बुद्धि, ज्ञान। जब भी किसी जीवको साहस होगा तो वह यथार्थज्ञानसे ही होगा। दूसरे स्वयं सब झुकर जायेंगे। चाहे जड़ पदार्थ

हो, चाहे चेतन पदार्थ हो। जैसे घरमें कोई बड़ा होता है और वह अपना साहस स्थिर रखता है तो घरके और लोग भी, साहसी, धीर, सुखी, स्थिर रहते हैं और वह बड़ा ही डावाडोल हो जाय तो छोटे-छोटे बच्चोंकी फिर क्या बात है ? इसी प्रकार प्रत्येक पुरुषका यदि अपना ज्ञान सावधान है तो १०-२० सैकड़ों लोग भी उसके साधक बनेंगे और यदि खुद ही बिगड़ा है, खुद ही अविवेकी है, खुद ही धैर्य छोड़ बैठा है तो और लोग क्या सहायता कर सकेंगे ?

जैसे कहते हैं ना कि धनसे धन आता है। अगर आपकी अच्छी स्थिति है, कारखाना है, दुकान है, ढंग है तो वहां धनसे धन बढ़ता है। इसी प्रकार स्वयमें यदि कुछ ज्ञान है, शांति है, समृद्धि है साहस है, धैर्य है, विवेक है तो उसके और लोग भी सहायक बनेंगे। दूसरे कोई उसके बाधक नहीं हो सकते। मानलो कोई पुरुष बड़ा है और वह किसी भी प्रकारके दुराचार पर उतारू हो जाये तो फिर भी क्या और लोग सहायक होते हैं ? जो सदाचारी हैं परोपकारी हैं, उसके सभी सहायक होते हैं। जो साधक होते हैं वे कुछ एहसान देते हुए सहायक नहीं होते हैं। खुदमें कुछ साहस है सो सहायक होते हैं। इसलिए गृहस्थजनोंकी सबसे बड़ी कमाई अपने ज्ञानकी सावधानी बनाना है। नहीं तो गृहस्थीके प्रसंगमें संकट इतने हैं कि जिन संकटोंसे यह गृहस्थ चूर हो सकता है। उन संकटोंके बीच भी अपने को स्वरक्षित रख सके—ऐसी कोई यदि औषधि है तो वह ज्ञानरस ही औषधि है। संसारके संकट बिल्कुल थोथे हैं क्योंकि उनका कल्पनासे उद्भव है, वस्तुतः उद्भव नहीं है। किसी विषयसे हम पर संकट आता है, ऐसा नहीं है, किन्तु हम ही रागद्वेष मोह कल्पना आदि कुछ भाव बनाते हैं तो वे संकट आ जाते हैं। ये भाव भी अमूर्त हैं। इन भावोंमें कोई जानदारी नहीं, सारवान नहीं, और संकट भी कोई जानदार नहीं, सारवान नहीं। संकट भी थोथे हैं। पर थोथे संकट, थोथे भावोंने ऐसा बड़ा रूप बना दिया कि जिसके कारण ये सभी दुर्गतियां हो गई। तो हमारी रक्षक है ज्ञानकी सावधानी और हम ज्ञानकी सावधानीका उद्यम करते हैं, रुचि करते हैं, सुबहके समय रोज शास्त्र सुनते हैं, जापके समय रोज जाप देते हैं- ये हमारे संकटोंसे बचने के साधन हैं। कुछ तो उपयोग हो जाय और यदि जैन शासनके तत्त्वका कुछ उतार चित्तमें हो गया तो उससे बढ़कर और निरापद साधन क्या हो सकता है ?

भैया ! ऐसा साहस सम्यग्दृष्टी जीवमें होना है कि जो सर्वस्थितियोंमें अपने को अन्तरमें फक्कड़ समझता है। कैसी भी स्थितियां हों, जो अपने आपको एकाकी केवल शुद्ध चैतन्यमात्र जाने, उसके लिए फिर कोई संकट

नहीं हैं। सम्यग्दृष्टि अपने स्वरूपको इस प्रकार जान रहा है कि यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। इसके ग्रहण करनेका साधन आत्मसंयम है। संयम एक बड़ा बल है और यह बल प्राप्त होता है किसी जीवका आघात या बाधा न करनेसे और अपनी इन्द्रियोंके बहकावेमें न आनेसे, जिस बलके कारण यह आत्मा आनन्दमग्न होता है।

संयम दो प्रकारके हैं— (१) इन्द्रियसंयम और (२) प्राणसंयम। इन्द्रियसंयमके कारण प्राणसंयम अच्छा पलता है और प्राणसंयमके कारण इन्द्रियसंयम अच्छा पलता है। ये दोनों संयम परस्परमें साधक हैं। प्राणसंयम क्या है? किसी जीवको बाधा न देना, अभक्ष्य न खाना, रात्रिको न खाना, दूसरोंसे लाभपूर्वक व्यवहार करना, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पापोंमें न बढ़ जाना, किसीका अनिष्ट चिंतन न करना, मनमें कुछ और वचनमें कुछ और शरीरसे कुछ और इस प्रकारके मायाचारक परिणमन न करना—ये सारी बातें हों तो आत्माका बल कैसे न बढ़ेगा? शांति कैसे न आएगी? जब हम मिथ्याभाव करें, दूसरोंसे मर्यादासे अधिक प्रीतिका परिणाम रखें तो उसमें क्लेश होना प्राकृतिक बात है। हम अपने परिणाम मिथ्या बनायें, मोहयुक्त बनायें तो दुःखी करने वाला दूसरा नहीं है, यह अपने परिणामोंसे ही दुःखी है। अपने आपमें किसी भी क्षण फक्कड़, एकाकी स्वरूप, न्यारा मात्र अपने स्वरूप अनुभव किये बिना संकटोंकी लड़ी टूट नहीं सकती।

भैया! सभी अपने आपमें नगे हैं। किसी भी द्रव्यको देख लो। अर्थात् सभी अपने ही स्वरूपको लिए हुए हैं। कोई भी द्रव्य किसी परस्वरूपको लिए हुए नहीं है। ऐसी प्रतीति बिना संकट नहीं टलते। ज्ञान और वैराग्य ही ऐसा बल है कि इसके कारण जीव कर्मोंसे नहीं बंधते और आकुलताएँ भी नहीं होतीं। जैसे किसी विषैली चीजका ज्ञान है कि इसके प्रयोगसे मरण हो जाता है तो ऐसा ज्ञान हो जानेसे मरण नहीं हो जाता, पर उस विषैली चीजको खा लेने से मरण हो जाता है। ज्ञानकी ओर झुकावका ऐसा प्रताप है कि ज्ञानी गृहस्थ भी इन्द्रिय साधनोंमें और भोगोंमें परिणति करते हैं, पर सब उनके झुकावका चमत्कार है। वे खेदपूर्वक उन्हें भोगते हैं। अपने प्रभुकी ओर झुकाव रखने के लिए भोगते हैं। भोगते हैं तो उनकी रक्षा है और अगर परमें आसक्त होकर भोगते हैं तो उनकी रक्षा नहीं है। बड़ा कर्मबन्धन है।

संयमके ये दो रूप हुए— (१) इन्द्रियसंयम और (२) प्राणसंयम। इन्द्रियसंयम बढ़े तो प्राण संयम सधता है। जैसा चाहे खाया, जैसा चाहे

रहन सहन रखा, इन्द्रिय भोगों पर उतारू हो गये, इन्द्रियोंको वशमें न कर सके तो उसको विषाद और आकुलताएँ निश्चित हैं। आजके समयमें पुरानी बातोंको आदर नहीं दिया जाता तो उसका फल यह है कि आकुलताएँ और विह्वलता ही बढ़ी हैं। पहिले समयमें लोग सात्त्विक रूपसे रहते थे, सादगीसे रहते थे, सादगी की ही सारी बातें थीं और धन जुड़ जाये तो उसका उपयोग धर्ममें खर्च करनेमें रखते थे। तब उनकी शांतिका क्या कहना था ?

कुछ लोगों ने तो अपने-अपने बुजुर्गोंको देखा ही है कि वे भोजन करते थे। वे कह देते थे कि अब भोजनका ६ घटेका त्याग है, चार घटेका त्याग है। लोग सोचते हैं कि ये दादा, बाबा लोग सब पुराने दिमागके आदमी थे। अरे भाई ये भी पुण्यकी बातें हैं। ६ घटेका भोजनका त्याग किया तो ६ घटे भोजनकी वासना तो न रही। उतने समयमें कुछ न कुछ निर्मलता बढ़ती थी, पुण्य बढ़ता था और देखते भी हैं कि मिल चल रहा है, सेठजी सत्सग के लिए एक-एक महीनेके लिए निकल गए, फिर भी काम वैसाका वैसा ही चलता है और उससे भी अधिक अच्छा चलता है। वैभव कामका कारण है तो पुण्यका उदय है। उसकी सुरक्षित प्रवृत्ति भी बनाए हैं तो बातें सब ठीक चलती रहेंगी। अपना तो एक सीधा प्रोग्राम बना लो। आगे पीछे नहीं सोचना है। जो उदयानुसार आया हो उसमें से हिस्सा करके खर्च करना है। भाग करके ही मिलेगा। उसमें चाहे चने खाकर रहना पडे, पर बजट बनाकर हिस्से बनाकर ही अपना प्रोग्राम बनालो तो सादगीका अच्छा जीवन व्यतीत होगा और यदि इस ससारमें कुछ दिखाना है तो फिर इस ससारका ही बन कर रहना पड़ेगा और अगर ससारमें किसीको कुछ दिखानेका भाव नहीं है तो धर्मकी नीतिसे चलकर, अपनी ओर मुड़कर अपना काम किए जावो। उसका फल ससारके सकटोंसे हट जाना है।

किसी भाई ने यह पूछा कि महाराज इस ससारमें कुछ दिखाना है— इस प्रकार का भाव रखेगा तो उसे इस ससारका ही बनकर रहना पड़ेगा, इसका क्या अर्थ है ? तो उसके उत्तरमें कहते हैं कि भाई हम यदि ससारमें अपना पोजीशन दिखाना चाहते हैं कि हम विशेष धनी हैं, हम नेता हैं, इन सबमें मैं अच्छा कहलाऊँ—ऐसे भाव यदि कोई अपनेमें बनाता है तो उसे इस ससारमें ही जन्म मरण करना पडेगा। और यदि दूसरोंको दिखानेका अन्तरङ्गमें भाव नहीं है, अन्तरङ्गमें तरग नहीं उठती हैं तो कदाचित् कर्मोदय से कभी तरंग उठ जाये तो यह मुकाबला देखें कि हम पर धन तरगोंकी अधिकता है या आत्मध्यानकी अधिकता है। कोई प्राणी ऐसा नहीं है जो

जन्मसे ही दूधका धोया हुआ निकले अर्थात् हर दृष्टिसे निर्दोष निकले, फिर भी अपने आपमे मुकाबला तो देखना चाहिए कि हम यदि बाह्यपदार्थोंकी कुछ उपेक्षा भी रख डालते हैं तो हम उसकी अपेक्षा अपनेको शुद्ध, विविक्त अपने आपमे निरखने का यत्न भी कुछ करते हैं या नहीं ? यदि अपने आपको निरखते हैं तो ससारके सकटोंसे दूर हो जायेंगे।

भैया ! करना कुछ भी पडे पर लक्ष्य शुद्ध बनाना चाहिए। हालाकि गृहस्थीमें रहकर गृहस्थीको अपने यशको सुरक्षित रखने का कर्तव्य है। यदि गृहस्थ अपना यश सुरक्षित न रख सके तो सक्लेश आयेंगे, धर्म साधनासे विचलित हो जायेगा। पर केवल यश सुरक्षित रखनेके लिए ही करता है तो वह श्रावक नहीं बना। उसका लक्ष्य होना चाहिए आत्महितका। सबसे विविक्त केवल निजस्वरूप का अनुभव जगे इसके लिए मेरी जिन्दगी है और इस उपायके लिए ही धन है और इस उपायके करने वालेके लिए धन है, तन है, वचन है और सबके प्रति सही सोचूं इसके लिए मन है—ऐसा शुद्ध लक्ष्य हो और फिर बीते कुछ भी, उस बीते पर आपका कोई अधिकार नहीं है। पर लक्ष्य तो कभी शुद्ध बने कि मेरा तो अपने आप पर ही अधिकार है।

सुकौशल स्वामी को अनेक स्थानोपर अनेक उपद्रव आए पर उनका उन उपद्रवोंपर क्या अधिकार था ? कोई भी तो अधिकार न था, पर अपने लक्ष्यको शुद्ध रख सकें, इस पर ही उनका हक था। यह उनका हक कोई नहीं छीन सकता था। इसही अपने लक्ष्यको शुद्ध बना लें और इसही लक्ष्यकी पूर्तिका यत्न करें तो सकट दूर हो सकते हैं। दूसरे किसी भी पुरुषमें यह शक्ति नहीं है कि वह मेरे सकटोंको दूर कर दे। चाहे कितना ही अच्छा मित्र हो, हितू हो, किसीमें भी सकट दूर करने की सामर्थ्य नहीं है। हम ही अपने ज्ञानकी करवट बदलें तो आनन्द पा सकते हैं। यदि हम ज्ञानको अंधा बनाएँ रहें तो हम सकटोंमे ही फसे रह सकते हैं। विश्वास अपनी निधि पर होना चाहिए। हमारा आपका स्वरूप इतना महान् और उत्कृष्ट है कि इसके निरखने से ही सर्व कुछ प्राप्त हो सकता है।

यह प्रभु कहा से आया है ? यह बादलोंसे टपका है क्या ? आसमान से निकला है क्या ? या जमीनसे सुरं जैसा छूटकर पहुच गया ? अरे गृहस्थके यहा ही जन्म हुआ, किसी महापुरुषने अपने ज्ञानकी खबर की, अपने आपको सभाला, ज्ञान वैराग्यकी वृद्धि हुई, लो कर्मोंसे मुक्त हुए, भगवान् बन गए। वही तो यह स्वरूप है जो प्रभुका स्वरूप है। कभी नहीं है। जो चाहे अपनेको ऐसा बनाए, जब अपने आपको विश्वास हो। जैसे कोई चीज कोई मुट्ठीमें ले लें और आपको न बताए। पीछे बताए, वह आप

से पूछे कि बतलावो मेरी मुट्ठीमें क्या है ? आप कुछ तो जवाब देंगे ही। फूल है, रत्न है, अगूठी है। कुछ न कुछ तो आप कहेंगे ही। वह कहेगा कि नहीं है। फिर वही पूछे कि अच्छा तुम्हीं बता दो कि क्या है मुट्ठीमे ? तो कहें कि मेरी मुट्ठीमें सारी दुनियां है। अच्छा खोलकर दिखाओ। खोलकर दिखाया तो निकली एक स्याही की टिकिया। अरे यह तो २ नए पैसेकी टिकिया है और कहते हैं सारी दुनियां। कहा अच्छा बैठो, बतलाता हू। कारीगर तो वह था ही। उस टिकिया को पानीसे मिलाकर पतली कर लिया और कलम उठा लिया। बोला क्या चाहिए तुम्हें ? कहा हमें स्वर्गका विमान चाहिए ? कलाकारने खींच दिया चित्र विमानका और कहा अच्छा लो बना दिया। यह तो एक उदाहरण है।

इसी तरह आत्मा क्या है ?- इसमें सर्वसिद्धियां हैं, सर्वचमत्कार है, सर्वस्व है। दिखाओ तो अच्छा, जो देखने की तरकीब है उससे चलोगे तो दिखा देंगे। आप हों, हम हो, कोई हों, तरकीब क्या है कि आत्माके सहज स्वरूपमें श्रद्धान ज्ञान और आचरण हो, उसमें ही मग्न हो जावो तो चर्या का वह प्रताप है कि सर्वसिद्धियां विकसित हो जाती हैं। एक अपनेको सभाला तो सब सभल गया और अगर अपनेको न सभाल सके, बाहर बाहरमें ही दौड़ लगाते रहे तो उससे क्या पूरा पड़ेगा ? जिन्दा मेंढक कोई तौल सकता है ? जरा किसी तराजूमें २ सेर मेंढक तौलो। एक पलडे पर रखा और दूसरा मेंढक उठानेको हुए कि वह उछल जायेगा। इस तरहसे मेंढकोंको कोई तौल न सकेगा। इसी तरह हम परकी व्यवस्थामें ही अपनी व्यवस्था बनाना चाहें तो नहीं बना सकते हैं। दो की व्यवस्था बनाई, दो चीजें टूट गई और अपने को व्यवस्थित बना लिया तो उस डोरीसे सब व्यवस्था बन गई। इस कारण अपने आपको व्यवस्थित बनाने के लिए ज्ञान-स्वरूपकी दृष्टि करना यह पहिली आवश्यक बात है। इसके बिना जीवन सूना है, सकटोंसे भरपूर है। कुछ समय तो अपने शुद्धस्वरूपकी आराधनामें लगावो और जो होना हो, हो, उससे मतलब नहीं है।

भैया ! पहिले बुजुर्ग लोग जो होते थे उनका नियम था कि ११ बजे तक मंदिरमें रहते थे। इसके पहिले कोई काम न करते थे। ऐसी उनकी व्यवस्था थी। लोगोंको आश्चर्य होगा कि कैसे बेवकूफ थे। किसी जगह ५ हजारके फायदे का सौदा आए तो भी वे जल्दी मदिरसे निकल कर न आते थे। उनका जीवन बिल्कुल सीधा सादा था, सो सुखप्रद थे। अपने सब पुराने रिवाज, प्राचीन पद्धति, सयम, नियममें लगना, विनय करना-ये सब बातें बनी रहना सुखका कारण है और जहां इन सीमावोंका भग किया वहां

सब आकुलताएं हैं। यहां यह बतला रहे हैं कि यह आत्मा स्वय ही सयम-स्वरूप है।

लोकमें जो सर्वोत्कृष्ट अप्राप्य तत्त्व है, वह यह आत्मा ही है। सयम यह आत्मा ही है। हाथ और पैर चलाने के ढङ्गका नाम सयम नहीं है। विषयकषायोंसे अपने उपयोगको मोडकर ज्ञानदर्शनमय शुद्धचित्प्रकाशमें रत करदे, इसका नाम संयम है। आनन्द सयममें ही है, इसमें कोई शक नहीं है। सयम दो प्रकारका है— एक अन्तरङ्गसयम और एक वहिरङ्ग-संयम। अन्तरङ्गसंयम तो यह है कि सकल्प विकल्प और विषयकषायके परिणामसे हटना, शुद्ध ज्ञानप्रकाशमात्र निज आत्मतत्त्वमें अपना उपयोग लगाना सो अतरङ्ग सयम है। पर ऐसा अतरङ्ग सयम ऐसी स्थितिमें बन नहीं पाता कि जिस क्षोभके कारण इसके वीसों शल्य लगे हों, दसों रोजगार रखे हों और अट्ट सट्ट अन्याय मायाचार धोखाके व्यवहार बना रखे हों और खानेका स्वाद लेनेकी इतनी आसक्ति हो कि जब चाहे, किसी भी समय कुछ भी वस्तु खा लेने का सस्कार बना हो तो सोच लीजिए कि इन वाह्यवृत्तियोंके वातावरणमें रहकर हम वास्तविक सयम को पा सकेंगे ? यह कठिन है और असम्भव भी है। इसी कारण वहिरङ्ग सयम लेना पड़ता है और लेना चाहिए। जैसी जिसकी शक्ति हो, निभ सके, निभने को तो सब निभता है, किन्तु आधुनिक जिसे कहते हैं जटलमैनी, वह भी अनुभवकी वाधिका है। जैसे छोटे छोटे आदमी जिनको ६० रुपया महीना नहीं प्राप्त होता है मगर पैन्ट सूटसे होते हैं और कितने ही नेकटाई लगाते हैं। तो यह प्रवृत्ति जो आधुनिक है वह हमें संयमसे बहुत दूर रख देती है। हम कितनी ही बड़ी पदवीके अधिकारी हों, राज्यसेवाका कैसा ही काम हो, पर अत प्रवृत्ति विनयपूर्वक सात्विक सत्यतापूर्ण हो तो हमारे जीवनको सयम के पालनका वातावरण मिलता है।

भैया ! हम अपने ही हृदयको कलुषित बनालें तो वहा धर्मभावोंका प्रवेश ही न हो सकेगा तो फिर बतलावो हमने नरजन्म किस लिए पाया ? जो कुछ नजर आते हैं, ये तो हमारे साथी नहीं हैं। ये तो मेरे साथी रहने के नहीं हैं। कितने दिनोंका यह सुख है और जब तक ये सुख साधन हैं तब तक भी भरोसा नहीं है कि हमें सुख मिल जाय। सारा लाखोंका धन पड़ा है, कारखाने चलते हैं, सब कुछ बातें हैं और सभा सोसाइटीमें किसी जगह कोई हल्की बात कह दे तो नवाब साहब दु खी हो रहे हैं। क्योंकि अपमान की बात सुन ली है ना ? यदि सम्यक्त्वका ज्ञानका बल हो तो उसमें ऐसा सा हस हो सकता है कि किसमें दृष्टि दें ? सब मायामय चीजें हैं। तो अन्त -

संयम आनन्दजनक है।

शील स्वभाव यह भी सुखका स्वरूप है। कोई पदार्थ हो, वह अपने आपमें ही रहता है। तो इसका अर्थ है कि वह अपने शीलमें रहता है, अपने स्वभावमें रहता है। शील भी एक आत्मा ही है। जो कुछ भी उत्कर्षका तत्त्व है यह सबमें होता है। आप है, आत्मा है, शाश्वत् मोक्षका मार्ग भी यही आत्मा है। यह आत्मा अपने उपयोगको चला रहा है। उपयोगका ड्राइवर है। हम किस ओर किसको घुमा दें तो दुःख हो और किस ओर किसको घुमा दें तो आनन्द हो। इतना ही अन्तर है। यदि इसे बाह्य दिशा में लगा दिया तो दुःख होगा और यदि अन्तर दिशामें लगा दिया तो आनन्द होगा। यह ही आत्मा अपने आपको जानता हुआ शाश्वत मोक्ष पदको पा लेता है। सयम दो तरहके हैं– एक अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखना और दूसरे प्राणियोंके प्राणोंकी हिंसा न करना। जो मनुष्य इन्द्रियोंको वश में रख सकता है वह प्राणियोंकी हिंसाको भी छोड सकता है। वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें रख सकता है। अपने शुद्ध आत्मामें ही अपने को स्थिर करना इसका नाम सयम है। यह आत्मा सयमस्वरूप है। यह आत्मा स्वयं शील है। प्रत्येक मनुष्य अपने को कुछ न कुछ रूप मान रहा है। सभी जो हम आप बैठे हैं, कोई जैसा परिणमन पाता है उस रूप मान लेता है। मैं सेठ हू, मैं मुनीम हू, मैं पण्डित हू, मैं बाबू हू, ऐसी पोजीजशनका हू, इतने परिवार वाला हू---ये सब अभिप्राय बहिरात्मत्वके हैं। अपने आत्मस्वरूपसे बाहर के पदार्थों मे यदि दृष्टि दी है कि मै मनुष्य हू, मै पुरुष हू, मैं स्त्री हू, तो यह बहिरात्मत्त्व है। मैं एक शुद्ध ज्ञानस्वभावी हू— इस प्रकार ज्ञानस्वभाव मात्र जो अपने आपका अनुभव करता है वह पुरुष अन्तरात्मा है। सम्यग्दृष्टि है तो वही शील है, जो अपने आत्मतत्त्वका अनुभवन कर रहा है।

देखिए लौकिक कलायें, देशको सभालनेकी कलायें, हुकूमत करनेकी कलाये, ये सब कलाएँ होती हैं। पर इन सबसे उत्कृष्ट कला एक ज्ञान की है। इसमे तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थ एक साथ प्रतिबिम्बित हो जाते हैं। उस कलाके सामने ये सारी लौकिक कलाएँ कुछ भी सामर्थ्य नहीं रखती हैं और इन कलाओंमें फसे रहे, उनमे ही बुद्धि बनाए रहे तो उस ज्ञानकी कलासे हाथ धोना पड़ता है। और इन कलाओंसे अपना स्वरूप न जानकर इनसे भी धीरेसे खिसककर अन्तरङ्गमें अपने आपमे रम सकता है। वह केवल ज्ञानकी कलाको प्राप्त कर लेता है। मै स्वय ही शील हू। काम, क्रोध मान, माया, लोभ, मोह ये ६ मेरे वैरी हैं। मेरा वैरी इस जगत्में अन्यत्र कहीं नहीं है। मेरा वैरी न कोई पुरुष है और न कोई पदार्थ है। मेरे

विकार, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह ये ही मेरे ६ वैरी हैं, ये ही अन्तर पीड़ा पहुचाते हैं, ये ही भव वनमें भटकाते हैं। आज मनुष्य हैं, कहीं कल कीडे बन गये तो वही दुःख भोग रहे हैं। कौनसी स्थिति हो गई कि ये सब दुर्गतियां हो गईं। इन काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह वैरियोंने ऊधम मचाया तो इनसे रक्षा करने वाला मैं ही तो हू। ऐसा शीलस्वरूप यह मैं आत्मा ही हू।

तपश्चरण भी मैं ही हू। अपने आपको निर्विकल्प स्वभावमें बनाए रहना इसमें कितना बल लगाना पडता है? अभी-अभी आप अपना बल देख लो। शरीरमें मल भरा है ना? नाक है, थूक है। अच्छा आप सब लोग साफ सुथरे बैठे हैं, यह नाक बाहर नहीं निकल जाती है, अन्दर भरी है। थूक नहीं निकल पाता है। अन्दर भरा है। लार नहीं निकल पाती। तो यह भी एक देहबलका स्वरूप है। जिसके बल नहीं है, बूढ़ा है तो जब चाहे लार ही टपक जाती है, नाक पोंछते-पोंछते हैरान हो जाता है। क्या फर्क आया कि शरीरमें बल नहीं रहा। शरीरका बल घट गया। यह भी सब को ज्ञान है कि यह शरीर मलरूप ही है। जिसको डाटे रहते हैं। कहीं लार न टपक पडे, इसलिए भी बल चाहिए ना? यह तो एक मोटी बात कही है, पर अंदरका उपाय अपने अंदरमें संयत रहे, नियत रहे, इसके लिए कितने बलकी आवश्यकता है? यही एक तपश्चरण है कि अपना जो शुद्धपरमात्मस्वभाव है उसमें ही प्रतपन बना रहे, तपना बना रहे, उपयोग इस चैतन्यस्वभावमें ही लगा रहे, यही है वास्तविक तपश्चरण।

भैया! शांति पानेके लिए, कर्मोंसे मुक्ति पानेके लिए बाहरी चेष्टावों का मूल्य नहीं है। अपने अन्तरङ्ग परिणाम का मूल्य है। आत्मस्पर्श हो, समस्त विकल्प जालको भुला दें तो इससे असीम आनन्द प्रकट होता है। हम आप सब आत्मा प्रभुस्वरूप हैं। जिस प्रकारका स्वरूप है उसही प्रकार का निर्माण है। अरे गेहू पडे हैं, कोई गिरुवा लगा हो, किसीमें गोबर लगा हो, किसीमें मिट्टी लगी हो, कोई साफ हो, पर उन सबका मूलभूत गेहू तो सब एक जातिका है। केवल ऊपरके लगे हुए मैलका अन्तर है। इसी प्रकार जितने भी जीव हैं प्रभुसे लेकर निगोद तक सब एक समान हैं। उनमें अन्तर नहीं है। ऐसे अपने ज्ञानानन्दनिधान आत्मस्वरूपको निरखो और उसमें ही रत रहो, यही परमार्थ तपश्चरण है।

अनशन, ऊनोदरवृत्ति, परिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय ध्यान व व्युत्सर्ग ये १२ प्रकारके ध्यान सहकारी कारणभूत हैं। जिसको ज्ञानकी साधना होती है

उसके लिए तप सहायक है। पर जिसके ज्ञान नहीं है उसके लिए तो यह कल्पना मात्र है। कोई किसीका बुरा करने के लिए अमुकसे मेरा बड़ा विरोध है, उसका नाश हो जाय—इस बातकी सिद्धिके लिए भगवान्‌की भक्ति करने लगे तो भाई यह भगवान्‌के आगे बैठा है भक्ति कर रहा है तो कर्म डर जायेंगे क्या ? वे कर्म तो अन्तरङ्गके परिणामोंसे सम्बन्ध रखते हैं। वे डरेंगे नहीं। तो इसी प्रकार मोक्षमार्गके योग्य ज्ञान जिसके प्रकट नहीं होता है, ऐसे पुरुषके ये तप, कायक्लेश साधनाएँ क्या इस जीवको मुक्ति दिलानेमें समर्थ हैं ? नहीं। ये तो मोक्षमार्गकी बातें नहीं हैं। मुक्तिका मार्ग तो एक शुद्ध ज्ञायकस्वभावकी रुचिमें मिलता है। निश्चयसे देखो तो अपने ही आभ्यंतरमें अन्तरङ्गमें समस्त परद्रव्योंकी इच्छाके निरोधके द्वारा अपना परमात्मस्वभाव मिलता है।

लोग प्रभुको प्रीतम कह कर पुकारते हैं। सुना होगा भजनोंमें, प्रीतम ही नहीं, सैया, बलमा आदि भी कहते हैं। प्रियसे भी जो प्रिय हो उसे बोलते हैं प्रियतम। प्रियतम का रूप बिगड गया सो हो गया प्रीतम। सोचो तो सही कि इस जगत्‌में प्रियतम कौन है ? धन पर आपत्ति आए, स्त्री पुत्रों पर आपत्ति आए, मुकाबलेमें दोनों सामने हैं तो आप किसको बरदाश्त कर लेंगे और किसको बचायेंगे ? आप धनकी आपत्ति तो बरदाश्त कर लेंगे और स्त्री पुत्रोंको बचायेंगे। तो धनके मुकाबलेमें स्त्री पुत्र प्रियतम हुए। परिवार पर भी आपत्ति हो और अपने जान पर भी आपत्ति हो तो आप यही वृत्ति कर डालेंगे कि अपनेको ही बचावेंगे तो बतावो कौन प्रियतम हुआ ? परिवारके लोग प्रियतम हुए कि आपका प्राण प्रियतम हुआ।

अपने आपपर कितने उपद्रव उठ रहे हैं। कितने रागादिक विकार उठ रहे हैं। एक तो प्राणोंका घात और एक ज्ञान गुणका घात। जो ज्ञानी पुरुष होगा उसके मुकाबलेतन देखो, एक ओर जान जानेका प्रसग है और उसी कालमें विकल्प करके ज्ञान गुणके घात न करनेका प्रसग है तो वह अपने जानकी उपेक्षा कर देगा और अपने ज्ञानको सुरक्षित रखेगा, निर्विकल्प रखेगा। ऐसा ही तो वह महात्मा है तब कौन हुआ प्रियतम ? निज सहज ज्ञानस्वभाव प्रभु।

सुकौशल सुकुमार, पार्श्वनाथ प्रभु आदि जिन पर बडे-बडे उपसर्ग हुए, उन्होंने अपने ज्ञानको ही स्वरक्षित रखा, अपने शरीरको सुरक्षित रखनेका जरा भी विकल्प नहीं किया। तो उनका प्रियतम था ज्ञान। और वही था उनका स्वामी, मालिक। स्वामीका ही रूप बिगड कर सैयां हो गया। कोई कहता है वल्लभ। वल्लभ उसे कहते हैं जो प्रिय होता है।

शब्द तो है वल्लभ, पर उससे बिगड कर बन गया वलमा। तो मेरा नाथ, मेरा स्वामी, मेरा रक्षक, मेरा गुरु, मेरा देव सब कुछ मैं ही हू। यह निजशुद्ध आत्मा ही उपादेय है।

मैं किसका सचय करूँ? किसको अपना घर मान लूँ जिससे सदा के लिए निराकुल हो जाऊँ। धन वैभव, सोना, चादी, घर जो कुछ भी दिखता है उनसे शांति नहीं मिलती है, अशाति ही बढ़ जाती है। सचयकी धुनि बढ़ जाती है। कौनसी चीजका सग्रह करले तो शाति मिल जाये, ऐसा निर्णय करके बतलावो। दसों आदमी मुझे अच्छा कहने लगें तो शांति मिलेगी क्या? इस पर भी विचार करो। क्या मिल जाये कि शाति इसमें भरपूर हो जाये? ऐसी कोई चीज बाहरमें हो तो उसका नाम लेकर बतलावो। ऐसी कोई चीज बतलावो जिसके पा लेनेके बाद फिर किसी प्रकारके कोई क्लेश नहीं उठेंगे। कुछ भी बाहरमे ऐसा नहीं है। अन्तरमें जो निर्विकल्प शुद्ध ज्ञानस्वरूप है उसका सचय तो करिये। ज्ञानस्वरूपमात्र अपनेको अकिञ्चन निरखकर अपनेको ज्ञानानन्दस्वरूपसे परिपूर्ण समझकर विश्रामसे बैठो तो तुम्हें आत्मीय, स्वाधीन विलक्षण आनन्द प्रकट होगा। यही तो एक बड़ी तपस्या है।

भैया! अपनेमें शान्ति चाहते हो तो अपने आपमें ही गुप्त बने रहो, किसीसे कहने सुननेकी आवश्यकता नहीं है, चाहे कोई यह जानता रहे कि यह अपने आत्महितके लिए कुछ नहीं कर रहा है, अपने आपमें ही गुप्त ही गुप्त अपने आत्मतत्त्वकी भावना बनाए रहो तो यही प्रगतिका अमोघ उपाय है। अपना ही शुद्ध आत्मतत्त्व अपनेको उपादेय है, ऐसी रुचि करने से यह ही आत्मा निश्चय सम्यक्त्व होता है याने सब उत्कृष्ट प्राप्तव्य चीज आत्म ही है। वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानके अनुभवनसे यह ही आत्मा निश्चय ज्ञान होता है और यह ही आत्मा मोक्षमार्गी होता है। सकटोंसे छुटनेका उपाय यह ही तो आत्मा है।

आत्मतत्त्व रागादिक समस्त विकल्प समूहोंका त्यागकर इस विधिसे निज परमात्मतत्त्वमें परम समतारसरूप परिणम जाये, कहीं इष्ट और कहीं अनिष्ट आशय न जगे, ऐसी वृत्ति बने तो यह ही आत्मा मोक्षका मार्ग है। इस प्रकार इस गाथामें यह तात्पर्य निकला कि दोनों प्रकारके सयममें रहकर, शीलमें रहकर शुद्ध आत्माकी अनुभूतिरूप भाव सयम आदि परिणाम करे तो ये सब उपादेय सुखके साधक हैं और सयमशील तो यह शुद्ध आत्मरूप ही है। सो यह अपना आत्मा ही अपनेको उपादेय है। जो कुछ-कुछ जान रहा है उसके ही जाननेमें लग जाएँ तो यह ही दु खोंसे मुक्त होनेका

उपाय है।

इस प्रकार इस दोहेमें अपने शुद्ध आत्माको ही सर्वस्व प्राप्तव्य कहा गया है। मैं आकिञ्चन् हू, अपने प्रदेशमात्र हू, मैं केवल ज्ञान दर्शन ज्योति मात्र हू, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू, और परिणमता रहता हू। इससे आगे मेरा कुछ लेन देन नहीं है। इससे आगे जो कुछ भी विकल्प, सकल्प विडम्बना आती है वह सब क्लेश हैं, मेरा स्वरूप नहीं है। मै शुद्ध हू। आकिञ्चन् हूं—ऐसी निरतर अपने आपकी भावना हो, जिससे निर्विकल्प स्थिति बने और शुद्ध आनन्दका अनुभव हो।

जितने भी करने योग्य काम है वे सब इस आत्मस्वरूप ही हैं। यही आत्मा सयम है, यही आत्मा शील है, यही आत्मा दर्शन है, यही आत्मा ज्ञान है, यही आत्मा अपने आपमें शुद्ध आत्मस्वरूप उपादेय है—इस प्रकारकी बुद्धिसे अपनी ओर झुकता है। इसी कारण यह आत्मा सम्यक्त्व है, रागद्वेपरहित निज आत्मतत्त्व के ज्ञानका अनुभव इस आत्माको ही है। इसलिए यह निश्चय ज्ञान है। मिथ्यात्व रागादिक समस्त विकल्पजालोंका त्यागके द्वारा परमात्मतत्त्वमय परमसमतारूप भावोंसे यही परिणमता है इसलिए यही मोक्षमार्ग है। साराश यह है कि यह शुद्ध आत्मा ही उपादेय है क्योंकि स्वाधीन परमउपादेय आनन्दका साधक आत्मा ही है। यह साधक कैसे बन जाता है? अपना जो शुद्धस्वरूप है। ज्ञानमात्र अपने आपकी सत्ता के कारण अपने आपमें जो स्वरूप है उसका अनुभवरूप भाव सयम बनता है। इस कारण यह ही आत्मा अपने स्वाधीन सुखका साधक है सो यही आत्मा उपादेय है। यह इस दोहेका भावार्थ हुआ। अब यह बतला रहे है कि अपने आपके शुद्ध आत्माके ज्ञानको छोडकर निश्चयनयसे देखा जाये तो और कुछ दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं है। शुद्ध आत्माकी सम्वेदनामें सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का एकत्व होता है, यह ही मोक्षका मार्ग है। शुद्ध आत्माके सम्वेदन को छोड़कर और कुछ दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं है इस अभिप्रायको रखकर इसका सूत्र कहते है—

अण्णु जि दसणु अत्थि णवि अण्णु जि अत्थि ण णाणु।
अण्णु जि चरणु ण अत्थि जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु ॥९४॥

इस आत्माको छोड़कर और कुछ दर्शन नही है, न और कुछ ज्ञान है, न और कुछ चारित्र है। आत्मा ही सम्यग्दर्शन है। यद्यपि व्यवहारनयसे ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व और ९ पदार्थ इनका परिज्ञान निश्चय सम्य-क्त्वका कारणभूत है सो ये सब शुद्ध भावोंके कारण ये व्यवहारसे सम्यक्त्व कहलाते हैं। फिर भी निश्चयसे देखा जाय तो वीतराग परमानन्दस्वरूप

है। एक स्वभाव जिसका ऐसा शुद्ध आत्मा ही उपादेय है इस प्रकारकी रुचि रूप परिणामोंसे परिणत शुद्धआत्मा ही निश्चय सम्यक्त्व होता है। जैसे धर्म कहीं देखा है किसी ने। किसी जगह रखा हो धर्म, मंदिरमें, मूर्तिमें, पुस्तकमें, कहीं किसी ने देखा हो कि लो यह धर्म आज इस अलमारीमें बैठा है, या किसी भी जगह देखा हो तो बतावो ? धर्म तो आत्माकी एक निर्मल परिणतिका नाम है। सो निर्मल परिणतिमें परिणत आत्मा ही धर्म कहलाता है। धर्म और कुछ नहीं है। धर्मी जीव का नाम धर्म है। धर्मात्माजन न हों तो धर्म किसका नाम होगा ? इसी प्रकार सम्यग्दर्शन क्या किसी जगह देखा है ? सम्यग्दर्शनकी परिणतिसे परिणमता हुआ आत्मा ही सम्यग्दर्शन कहलाता है।

ज्ञान क्या कहलाता है ? शास्त्रोंके ज्ञानका नाम तो व्यवहारसे ज्ञान कहा है क्योंकि वास्तविक ज्ञान तो है निश्चय परमार्थभूत आत्मतत्त्वका सम्वेदन। आत्मतत्त्वके सम्वेदनरूप ज्ञानके कारणभूत होनेसे व्यवहारसे शास्त्रज्ञानको ज्ञान कहा है तो भी निश्चयसे वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानमें परिणत शुद्धआत्मा ही वास्तवमें निश्चयज्ञान कहलाता है, सो ज्ञान भी आत्मा ही है। आत्माको छोडकर ज्ञान कहीं अन्यत्र नहीं है। इसी प्रकार चारित्र भी आत्मा ही है। यद्यपि मूलगुणका नाम अर्थात् गुणका नाम व्यवहारसे चरित्र रखा गया है क्योंकि वह मूलगुण और चरित्रगुण निश्चयचरित्र का साधक होता है, फिर भी निश्चयनयसे चारित्रको देखा जाय तो शुद्ध आत्माके अनुभवरूप वीतराग चरित्रमें परिणत निज शुद्ध आत्मा ही चरित्र कहलाता है। इसी प्रकार भेदरत्नत्रयमें परिणति आत्मा ही उपादेय है। यह इसका भावार्थ हुआ। यह सब आत्माके वैभवका वर्णन है।

भैया ! तुम वैभव अन्यत्र कहा देखते हो ? वैभव स्वयं यह आत्मा ही तो है। इस आत्माकी पहुचके लिए बडे बडे योगीश्वरोंने बड़ी-बडी कुर्बानी की, सब कुछ छोड़ा, वनमें गये। केवल एक ब्रह्मकी धुन लगाये रहे। पर किसीको वह ब्रह्मस्वरूप साधारणसे यत्नमें ही नजर आ गया और किसी को ब्रह्मस्वरूप अनेक यत्न करने पर भी नजर नहीं आता। यह सहज कला का फल है। यह आत्मा ही मोक्षमार्गी है, मोक्ष है, रत्नत्रय है और जो जो भी गुण प्रशसाके योग्य हैं वे वे सब आत्मा ही हैं। अब आगे के दोहेमें यह बतलाते हैं कि निश्चयसे वीतराग भावोंमें परिणत निज शुद्धआत्मा ही निश्चय तीर्थ है।

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुउ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहु अप्पा विमलु मुएवि ॥९५॥

किसीने अपने जीवनमे श्रवणवेलगोल न देख पाया हो, न शिखर जी देख पाया हो, न पावापुरी देख सका हो, किन्तु ज्ञानके शुद्ध आत्मस्वरूप की बड़ी लगन हो, जिसमे मोह रागद्वेपका प्रसार न हो, अपने ही गावमे, मंदिरमें, वडे धर्म ध्यानमे रहता हो और बहुत-बहुत क्षण अपने शुद्ध आत्माकी झलक प्राप्त करता रहता हो तो वह आत्मा तो स्वयं तीर्थ हैं। जो ये व्यवहारमें तीर्थराज हैं, निर्वाणके साधन प्रतिमा, चैत्यालय आदि ये तीर्थ भूत पुरुषोंके गुणोंके स्मरणके लिए हैं। ये स्थान स्वयं अपने स्वरूपसे तीर्थ नहीं हैं। व्यवहारमे कहते हैं कि शिखरजीका एक-एक कण पूज्य है। उसका सीधा अर्थ यों नहीं लगाना कि शिखर जी में जितने पत्थर पडे हैं और कंकड़ पडे हैं वे सब पूज्य है, किन्तु उस स्थान परसे अनेक मुनिराज मुक्ति गए है, सो वह स्थान तीर्थ माना गया। तीर्थ तो वह है जिस उपायसे महापुरुष तिर जायें और जो दूसरों के तिरने का कारण बनें, उस स्थान पर पहुच कर हम आप लोग उन तीर्थंकरोंके गुणोंका स्मरण किया करते हैं। जब टोंक पर पहुंच गए तो जो अज्ञानी होगा वह तो कहेगा कि बस मिल गया टोंक और जो ज्ञानी होगा उस टोंकके पास पहुचकर गौतमके गुणों का स्मरण करेगा। धन्य है हे गौतमदेव अजितनाथमे टोंक पर पहुंचे तो उनके गुणो का स्मरण किया। निश्चयसे तो तीर्थ वह परमेष्ठी आत्मा है।

जैसे किसीके पिताका फोटो है। मान लो पिता जी गुजर गए और उनका फोटो ही रह गया तो उस फोटोको देखकर कहते हैं कि देखिये यह है मेरे पिता जी। तो क्या पिता जी आपके ऐसे थे। ५ आनेके कागज वाले और काली स्याही पुती वाले थे? पर उस फोटोको देखते ही चूँकि पिताका स्मरण हो जाता है इसलिए व्यवहारसे फोटोको देखकर कहते हैं कि ये हैं पिता जी। अर्थात् इसे देखकर तुमने ख्याल बना लिया कि ये हमारे पिता जी थे। तो यों ही आत्मा निश्चयसे तीर्थ है, जगह तीर्थ नहीं है। स्थान व्यवहारसे तीर्थ है।

भैया! लोग जागते ज्ञान का या जगाने वालेका या ज्ञानसे जिन वचनोंमे शिक्षा मिलती हैं उनका आदर करने वाले तो बहुत थोडे होते हैं और अभी किसी तीर्थपर मेलेकी खबर आ जाये, महावीरजी का मेला होना है तो कितनी ही भीड़ लग जायेगी। और उसी महावीरजी में कहीं प्रवचन होता हो उसी जगह तो वहा भैया कितने मिलेंगे? किसी ने कहा तीन (हंसी) और ज्यादह समझ लो ६६ आदमी होंगे। मानलो मगर भीड वह कितनी है? मानलो दो तीन हजार आदमियोंकी। तो आप बतलावो कि वहा ज्ञानके प्यासे होकर गये या अपना मन बहलानेके लिए, अपनी रोज

मुकदमा तथा अपने लडकोंको ठीक रखने के लिए गए ? शुद्ध धर्मकी प्यास जगाना भी वडे होनहार पुरुषोंके हुआ करती है। वास्तवमें निजी आत्मतत्त्व ही अपना तीर्थ है। अपने आपको जब संतोष नहीं हो पाता है तब बाहर संतोष ढूँढनेके लिए निकलते हैं। अपने आपकी ज्योतिके बलसे अपने आप में संतोष हो जाये तो फिर कौन यहा वहा दौड लगायेगा ? तीर्थ उसे कहते हैं जो संसारसमुद्रसे तिरानेमें समर्थ हो। निश्चयसे यह आत्मा ही समस्त संसारजालसे तिरानेमें समर्थ है। इस कारण यह आत्मा ही तीर्थ होता है।

क्या करना है भैया ? संसारसमुद्रसे तिरना है। तो फिर जहाज लावो पानीका, अच्छा लिए आते हैं। हा ले आए। पर ऐसा जहाज ले आना जिसमें छेद न हो। छेदको भैया क्या बोलते हैं ? दुलके विना छिद्रका जहाज हो। अच्छा तो ऐसा ही लायेंगे। लावो फिर तो यह है। क्या है ? वीतराग निर्विकल्प समता परिणाम। यही है समुद्रसे तिरानेमें समर्थ जहाज (अग्नि-वोट) जो आग, पानी, भापसे चलता है। यह समाधि भी तपस्यारूपी आग से चलती है और उसमें छिद्र भी कुछ नहीं हैं। समता परिणाममें कहा छिद्र हैं ? छिद्र तो रागद्वेषमें हैं। ठोस रागद्वेष नहीं होता है। टूटा टूटा होता है। कहीं एक ठिकाने तो नहीं रहता है रागद्वेष। अभी अमुक वस्तु पर राग है, और अगर वह वस्तु बिक गई तो वह राग अमुक पर हो गया।

शादी होने के बाद २-३ साल तो समझ लो कि अच्छी तरहसे समय निकलता है और तीन चार सालके बाद जरा-जरा सी बातों में झगडा होने लगता है। अभी इन पुत्रोंको देखो, कुछ समय तक तो सुहाते हैं पिता को, फिर नहीं सुहाते हैं। ये वडे लोग लडकोंको डाट देते हैं— बच्चों ऊधम मत मचावो। और अगर लडका कह दे कि तुम जब हमारी उमरके थे तो तुम न ऊधम मचाते थे क्या ? तो क्या जवाब होगा ? तो जैसा बापने किया है वैसा ही लडका करेगा। लडकोंकी कषाय बापको सुहाती नहीं, सो उन पर राग नहीं रहता है। राग कहा टिके ? आज अच्छा बोलते हैं और कल लड़ाई हो गई तो। वेवकूफ और फजीहतमें सद्व्यवहार कैसे रह सकता है। यह जो समतारूप व्यवहार है वह निश्छल है। समताके द्वारा संसारसमुद्रसे तिरानेमें समर्थ यह आत्मतत्त्व ही है। इस कारण वास्तवमें यह आत्मा ही तीर्थ है। और उसके उपदेशसे, परम्परासे परमात्मतत्त्वका लाभ होता है।

यह आत्मा ही वास्तवमें तीर्थ है, यह आत्मा ही वास्तवमें गुरु है। जो शिक्षा दे, दीक्षा दे, वह यद्यपि व्यवहारसे गुरु होता है पर निश्चयसे पचेन्द्रिय विषय आदिक समस्त विभाव परिणामोंके त्यागके सम्बन्धमें संसार वच्छेदका कारण होनेसे निज शुद्धआत्मा ही वास्तवमें गुरू है। गुरु कौन

होता है जो संसारके संकटोंका विनाश कर देता है। मेरे संसारके संकटोंका विनाश कौन करेगा? कोई पड़ौसी बाबा उपकार करने न आ जायेंगे। खुद ही यह आत्मा शुद्ध स्वरूपमय आत्माकी दृष्टि करके उपकार करेगा। सो व्यवहारसे शिक्षा दीक्षा देने वाला भी गुरु होता है। वैसे तो पंचेन्द्रियके विषयोंका त्याग करने वाला यह स्वय शुद्ध आत्मा है, केवल आत्मा है। इस कारण यह आत्मा ही वास्तवमें गुरु है। सो यों इस आत्माको ही सर्वस्व वैभव रूपमें निरखना चाहिए।

यहां यह बतला रहे हैं कि निश्चयसे तीर्थ भी आत्मस्वरूप ही है। यद्यपि प्रथम अवस्थाकी अपेक्षा या सविकल्प दशाकी अपेक्षा चित्तको स्थिर करनेके लिए तीर्थंकर पुण्य कर्मोंके कारणभूत और साध्य-साधक भावोंसे परम्परासे, निर्वाणके कारणभूत जिन प्रतिमा आदिक को व्यवहारनयसे देव कहते हैं तो भी निश्चयसे तो निज शुद्ध आत्मस्वभाव ही देव है। अपने आपके स्वभावको स्पर्श करने वाली दृष्टि ही परम अमृत है। जिसने इस शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि नहीं पाई उसने यदि लाखों और करोड़ोंका वैभव भी पाया तो इस आत्माके लिए तो वह तुच्छ है। इन सब बाह्यपदार्थोंसे आत्म का हित नहीं होता। व्यवहार से देव जिन-प्रतिमाको भी कहते हैं और समवशरणमें भी साक्षात् रहने वाले उस परम औदारिक शरीरको भी देव कहते हैं। और उस परम औदारिक शरीरमें रहने वाला निर्मल स्थान निर्लेप परमात्माको भी देव कहते हैं। मेरे लिए तो ये तीनों प्रकारके दे व्यवहारसे हैं। मेरा निश्चयसे देव निज शुद्धआत्मस्वभाव ही है। कब पत पड़ता है इसका? परम आराध्य होनेके कारण वीतराग निर्विकल्प ती गुप्तियोंसे सुरक्षित परमसमाधि कालमें इस देवका पता पड़ता है। इ प्रकार निज और व्यवहारसे, साध्यसाधक भावसे तीर्थका, गुरुका औ देवताका स्वरूप जानना चाहिए। निश्चयसे तीर्थ अपना आत्मा ही है व्यवहारसे तीर्थ वह है जहासे प्रभु मोक्ष पधारे। निश्चयसे गुरु निज आत है और व्यवहारसे गुरू वह है जो शिक्षा और दीक्षा दे। निश्चयसे दे निज शुद्ध आत्मस्वभाव है और व्यवहारसे देव निर्दोष सर्वज्ञ परमात्मा औ उससे भी दूरका व्यवहार परमऔदारिक शरीर विशिष्ट व्यञ्जन पर्या उससे भी दूरका व्यवहार जिन-प्रतिमा है। निश्चयसे तो निज शुद्ध आत स्वभावही देव है। अब निश्चयसे आत्माका सम्वेदन ही दर्शन है—इस प्रक का प्रतिपादन करते हैं।

अप्पा दसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु।
एक्कु जि जोइय झाइयइ जो तइलोयहँ सारु ॥९६॥

आत्मा सम्यक्त्व है। यह केवल आत्मा दर्शन है, सम्यक्त्व है। अन्य शेष सब व्यवहार हैं। इस कारण हे योगी ! एक ही तीन लोकका सारभूत आत्मतत्त्व ही ध्याया जाता है। निश्चयसे अपना आत्मा ही सम्यक्त्व है। किस तरहसे देखा गया यह आत्मा सम्यक्त्व है? वीतराग चिदानन्द स्वभाव वाले परमात्मतत्त्वका सम्यक श्रद्धान् और सम्यग्ज्ञान और अभेद अनुभव यही हुआ रत्नत्रय। इसीको ही कहते हैं निर्विकल्प समाधि। इसी को कहते हैं त्रिगुप्तिकी पूर्णता। इस परिणाममें परिणत स्व-आत्मा ही निश्चयसे सम्यक्त्व है। और शेष सब व्यवहार हैं। इस कारणसे यह ही आत्मा एक ध्याया जाना चाहिए।

अब जैसे दाख कपूर शक्कर आदि बहुत द्रव्योंसे तैयार किया गया शर्बत, पानक अभेद विवक्षासे तो वह एक पानक है। जैसे ठंडाई घोटकर पीते हो ना तो उस ठंडाईमें किसका आनन्द आता है क्यों राजा बाबू ? बोले बादामका। अरे नहीं उसमें किसी एक चीजका आनन्द नहीं है। वे ऐसे मिल गये हैं कि किसी एक चीजका स्वाद नहीं मालूम होता। सबका मिश्रित स्वाद है उसमें एक अवक्तव्य आनन्द है। इसी प्रकार निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय सम्यक् चारित्रसे परिणमता हुआ यह यद्यपि अनेक पर्यायोंसे दृढ़ होता है तो भी अभेदविवक्षासे तो वह एक ही आत्मा है। वहा अभेदरत्नत्रय शुद्ध आत्माका अनुभव है। भेदविवक्षासे यह आत्मा अनेकरूप कहा जाता है किन्तु अभेदविवक्षासे तो यह एक ही आत्मा है।

रत्नत्रयका लक्षण यह कहा गया है शास्त्रोंमें कि आत्माका निश्चय करना सो तो है सम्यक्त्व और आत्माका परिज्ञान करना सो तो है बोध और आत्मामें ही स्थित हो जाना सो है सम्यक्चारित्र। जब ऐसी परिणति आत्माकी हो जायेगी तब कर्म बंध क्या हो सकता है ? नहीं हो सकता। पूर्व अवस्थावोंमें भी इस सम्यग्दृष्टी जीवके जितने अशमे सम्यक्त्व है, जिन भावोंसे सम्यग्दर्शन है, उन भावोंसे बंध नहीं हो सकता, किन्तु जितना राग है उतना बंध है। जो सम्यग्ज्ञान की कणिका है उससे तो बंध नहीं होता किन्तु जो राग है उससे बंध होता है। इसी प्रकार जो सम्यक्चारित्रका अश है उससे भी बंध नहीं होता किन्तु जो राग का अश है उससे बंध होता है। हम आप दोनों काम करते हैं। जान भी रहे हैं और राग भी कर रहे हैं। क्या आप एक ही काम कर रहे हैं ?

अच्छा भैया ! जानो कुछ मत और खूब राग करो तो क्या कर सकते हो ? जानते हुएमें राग कर सकते हो और जिन पदार्थोंको जानते नहीं हो उनमें राग नहीं कर सकते। यह पत्थरकी मूर्ति कुछ जानती नहीं है

इसलिए राग नहीं कर सकती है। जो जानता है वह राग भी करता है। पर जाननेकी कलासे बध होता है या रागकी कलासे वध होता है ? घरके लोगोंको आप जान गए और बंध गए, तो ज्ञानकी कला से वधे या रागकी कलासे बध ? ज्ञानकी कलासे तो आप सदा सही हैं और जितने अशमें राग है उस रागके कारण आप बध गए हैं। जगत्के किन जीवो पर हम अपने सुखका विश्वास करें ? कोई अपना नहीं है। सव अपनी-अपनी कषाय की पूर्तिमे लगे रहते हैं। व्यवहारमें असली परिवार तो आपका साधुसंत विरक्त ज्ञानी पुरुषोका संग है और जिनका संकट दूर हुआ, निकट कालमें ही जिनको मुक्ति प्राप्त होगी, ऐसे जीवोका सग ही वास्तविक परिवार है। घरमें रहने वाले लोग ही सव कुछ हैं—ऐसा मोही जीव मानते हैं और साधु सत ज्ञानी पुरुषोंको लौकिक व्यवहारके नाते हाथ जोड़ लेना, विनय करना इतना ही कर्तव्य समझते हैं। और यह संसारका विनय आदिक प्रवर्तन भी अपनी पोजीशन रखनेके लिए मानते हैं। जिनको मुक्तिमार्गसे प्रेम है उनका वात्सल्य उनका प्रेम साधुसत महापुरुषों पर पहुचता है, किन्तु मोहियोका प्रेम मोही जीव पर जाता है। मान लिया कि यह मेरा है, वह उनसे ही मिला हुआ रहता है।

अव इसके बाद उस निर्मल आत्माका निरूपण करते हैं। जिस निर्मल आत्माके ध्यान करनेसे अन्तमुहूर्तमें ही मोक्षपद प्राप्त हो जाता है। जैसे कभी स्वप्नमें देखा होगा कि पास ही मे तो इष्ट चीज रखी है, मानो एकदम उठा लेना चाहते है, पर एक इंचका ही कोई पर्दा या रुकावट ऐसी पड जाती है कि वह स्वप्नमें हैरान हो जाता है कि लो, एक ही इंचके वाद में तो चीज रखी है और मिलती नहीं है। कितना ही जोर भी लगा रहा है पर चीज नहीं पा सका। जरासा जोर और लग जाय तो चीज पा ले। इसी प्रकार अत्यन्त निकट अपने आपमे ही बसा हुआ है वह परमात्मा जिसके कारण हम धनी कहलाते हैं, जिससे सारे संकट दूर हो जाते हैं ऐसा यह परमात्मा खुदमे विराजमान है। देखनेकी कला हो तो देख लिया जाये। सर्वसमृद्धिका निधान सर्वमनोरथको कहते हैं। यह ज्ञानस्वरूप है। मात्र जाननके स्वरूपमें ही यदि दृष्टि लगावो तो वह आनन्द मिलेगा जो सर्वत्र दुर्लभ है। उस ही आत्मतत्त्वका वर्णन करते हैं जिसका ध्यान करने से अन्तर मुहूर्तमें ही मोक्षपद प्राप्त हो जाता है। यदि वडे विशेषरूपसे एकान्तमनसे ध्यान किया जाये तो अवश्य शाश्वत आनन्द प्राप्त होता है।

अप्पा झायहि णिम्मलउ कि वहुए अण्णेण।
जो झायंतहँ परमपउ लब्भइ एक्कखणेण ॥६७॥

तुम उस निर्मल आत्माका ध्यान करो। बहुत बातें कहनेसे क्या लाभ है? व्यर्थ क्यों बकवाद करें। तुम तो एक उस आत्माका ध्यान करो जिसका ध्यान करने से महापुरुष क्षणमात्रमें परमपद प्राप्त कर लेते हैं। "लाख बातकी बात यही निश्चय उर लावो। तोड़ सकल जग दंद फंद, निज आतम ध्यावो।।" बहुत कहनेसे क्या फायदा? अपने आपमें बसे हुए उस शुद्ध परमात्मस्वरूप पर न्यौछावर हो जावो, एक ही ज्ञानस्वभावी आत्माका ध्यान करो और इस शुद्ध आत्मासे बहिर्भूत इन रागादि विकल्पजालोंके प्रपंचोंसे क्या फायदा? गुप्त होकर, सबको भूलकर, निर्भार मानकर केवल अपने आप ही गुप्त हो जावो। देखलो अपने आपमें बसे हुए शुद्ध ज्ञान-स्वभावको, जिस परमात्माका ध्यान करनेसे परमपद प्राप्त किया जाता है क्षणमात्रमें, अन्तर्मुहूर्तमें।

समस्त शुभ, अशुभ, संकल्प विकल्प समूहोंसे रहित निज शुद्ध आत्म-तत्वके ध्यानमें रहकर अन्तर्मुहूर्तमें ही मोक्षपद प्राप्त कर लिया जाता है इस कारण हे भाई इसका ही निरन्तर ध्यान करना चाहिए। यहा एक प्रश्न होता है कि यदि अन्तर्मुहूर्तमात्र परमात्माके ध्यान करनेसे मोक्ष होता है तो इस समय हम लोग उसका ध्यान करेंगे तो मोक्ष होगा ना? नहीं होता है। क्यों नहीं होता है कि जैसा ध्यान पहिले बडे ऊँचे संहनन वालोंके होता था शुक्ल ध्यान वैसा ध्यान अब नहीं होता है। यहा तो पूजा कर रहे होंगे और इतनेमें आकर कोई खबर दे कि तुम कल दुकानका ताला उल्टा लगा आए, साकर खाली रह गई तो उस पूजाको छोडकर ही तुरन्त चल देंगे यदि दुकानसे तीव्र राग होगा तो। कहा है संहनन, कहा है वह विचार, कहां है वह दृढता? तो जैसा ध्यान पहिलेके जीवोंको होता था वैसा अब नहीं है। शुक्लध्यान तो होता ही नहीं है आजके समयमें, पर धर्मध्यान तो होता है। धर्मध्यान तो चोखा हो सकता है ना? उस धर्मध्यानमें प्रवृत्ति लगे, जिससे परमपर्याय निकटकालमें मोक्षपद प्राप्त हो सकता है। सो जिस कारणसे परमात्मतत्त्व का ध्यान करनेसे अन्तर्मुहूर्तमें ही मोक्ष प्राप्त कर लिया जाता है इसी कारणसे ससारकी स्थितिके छेदनेके लिए इस समय भी उस शुद्ध ज्ञानस्वरूपका ध्यान करना चाहिए।

अब यह कहते हैं कि जिस पुरुषकी वीतरागतामय शुद्ध परिणामोंकी भावना नहीं है अथवा रागरहित मन नहीं है और मनमें शुद्ध आत्माकी भावना नहीं है तो उसका शास्त्र, पुराण, तपस्या क्या भला कर सकते हैं?

अप्पा णियमणि णिम्मलउ णियमें वसइ ण जासु।
सत्थपुराणइँ तवचरणु मुक्खु विकरहिं कि तासु ॥९८॥

आत्माकी निर्मलता जिसके चित्तमें नियमसे नहीं ठहरती, उसके चित्तमें शास्त्र पुराण, तपस्या आदि भी निरर्थक हैं। वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शुद्ध आत्माकी भावना जिसके चित्तमें नहीं है उसके शास्त्र, पुराण, तपस्या ये निरर्थक होते हैं। आनन्द मिलता है तो वह अपने परिणामोंसे मिलता है और आनन्द भी किसी दूसरेको क्या विदित हो सकता है। खुदको खुद ही अनुभव करता है। जैसे किसीके बेटेका विवाह हो तो विवाहके अवसर में लडकेकी मा बहुत व्यस्त रहती है। उसे सोने तक का भी समय नहीं मिलता है। अब यह करना है, अब वह करना है। मारे श्रमके पसीनेसे लथपथ हो रही है। उस मौके पर पड़ौसकी स्त्रियां गानेके लिए बुलाई जाती हैं ना, सो वे बडी तेजीसे गाती हैं और हँस-हँस कर, मुंहसे मुँह मिलाकर वे परस्पर में गाती हैं। मेरे दुल्हा सरदार, राम लखन सी जोड़ी, आदि खूब चिल्ला-चिल्लाकर हस-हंस कर गूँज देती हैं। मगर यह तो बतलावो कि भीतरमें आनन्द उसकी माको है कि उन पड़ौसकी स्त्रियोंको है ? उसकी मा को है। यदि दुल्हा घोड़ेसे गिर जाये और टाग टूट जाये तो उन पड़ौसकी स्त्रियोंकी बलासे, वे तो १॥ छटाक बतासेके लिए आई हैं। दुःख होगा तो लडकेकी मा को होगा।

भैया ! ऊपरी व्रत तपस्या और भेषसे यह निर्णय नहीं हो सकता कि यह पुरुष आध्यात्मिक है, मोक्षमार्गी है, मोक्षको जाने वाला है। जो आध्यात्मिक हैं, जिसकी दृष्टि अपने स्वभावको छू सकती है उस पुरुषके जाहरका लोगोंको पता क्या ? पता हो या न हो। उस दिखावे से लाभ क्या ? अपना मन पवित्र है, अपनी चर्या शुद्ध है, अपने आपके स्वभावकी दृष्टि है तो यह आत्मा मोक्षमार्गी है। अब उसे किसी बातकी चिंता नहीं। और एक अपने आपका ही मन शुद्ध नहीं है तो वहा ये सब तपस्याये व्यर्थ हो जाती हैं।

एक जगलमें मिला एक साधु लकड़हारेको। सो लकड़हारे ने कहा, महाराज हमे कोई शिक्षा दे दो। कहा, तू हर जगह णमो अरहंताणं बोला कर भैया णमो अरहताण मे बहुत मर्म और रहस्य है। अरहन्त किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। जो आत्मा रागद्वेषरहित हो गया उसको अरहन्त कहते हैं। पूज्य, उत्कृष्ट, योग्य कहते है। तू हर जगह णमो अरहताण बोला कर। लकड़हारा घर चला गया ? स्त्री कहती है कि आज लकड़ी नहीं लाए तो वह कहता है णमो अरहताण। अब कल तो लावोगे ? बोला, णमो अरहताणं फिर दूसरा दिन आया, वह अपनी धुनमें मस्त था। नहीं गया लकड़ी लाने। स्त्री बोली, लकड़ी लाने नहीं गए ? बोला, णमो अरहताण। बच्चोंको

क्या खिलावोगे ? णमो अरहताण। दो दिन हो गए। तीसरा दिन हुआ अब उसने खीर बनाई थी। खीर बनाकर वह बुलाती है। खीर बन गई है आवो, खावो। पहुच गया। स्त्री ने फिर पूछा, तुमने सब काम छोड़ दिया तो बोला णमो अरहताण। उसके आया गुस्सा सो चूल्हेकी जलती हु अधजली लकड़ी मारी सिर पर तो भाग्यकी बात कि उस लकड़ीके टूटने १०—२० मोती खिर गए। अब वह मालोमाल हो गया। उसके घरसे लग हुआ घर था सेठका। उस घर की सेठानी ने लकड़हारेकी स्त्रीसे पूछा कि तुम्हारे पति तो लकडी बीनते थे। मालोमाल कैसे हो गए ? कहा सुन कहानी। दो तीन दिन न जाने क्या बात हो गयी थी कि इनसे काम कर को कहे तो वे कहें णमो अरहताण। मैंने एक दिन खीर बनाई। स्त्री बहु धीरे स्त्रीसे बात करती है तो समझो कि कोई बहुत बडी बात होगी। उस बहुत धीरेसे, कहा अच्छा सुनो, मैंने एक दिन खीर बनाई, सो वे खीर खा आए और बैठ गए। सो हमने कहा कि तुमने सब काम छोड़ दिया। स उन्होंने कहा णमो अरहताणं, तो मैंने एक अधजली लकडी सिर पर मारी वह लकडी टूट गई और उससे मोती खिर गए। सेठानी ने सोचा कि यह तो धनी होनेका बड़ा सुगम उपाय है। सो सेठानी ने सेठसे कहा कि सुनो सेठजी, तुम धन कमा कमाकर मरे जा रहे हो, हम तुम्हें ऐसी अक्ल बता कि तुम्हारे दो दिनमें करोडों रुपया हो जायेंगे। कहा अच्छा बतलावो कहा कलके दिन हम बनायेगी खीर। सो तुम्हें खानेके लिए बुलायेंगी कि आवो खीर खा जावो और तुम आ जाना। हम तुमसे कुछ भी कहें तो यही कहना णमो अरहताण। फिर देखना मोती ही मोती बरसेंगे। दूसरे दिन सेठानी ने खीर बनाई। सेठ जी आ गए खीर खाने। सेठानीने कहा देखो तुमने हमें करधनी नहीं बनवाई ? तो सेठजी कहते णमो अरहताणं। सिखा- दिया था। सो अधजली लकडी उठाई और सिर पर दे मारी। लकडी टूट गई पर मोती एक भी न गिरा। सेठानी ने बड़ा अफसोस किया। सेठ से कहा कि देखो पड़ोसिनने ऐसे ही किया था, सो मोती बरसे थे और हमने वैसे ही किया तो एक भी मोती नहीं बिखरा।

अरे भैया, वह तो भावोंकी बात थी। बनावटसे धर्म नहीं होता है। स्वस्थ निर्मल परिणाम हो तो धर्म होता है जिसकी आत्मा निर्मल नहीं है उसके तपस्या, शास्त्र, पुराण सब निरर्थक हैं। क्या सर्वथा निरर्थक है ? नहीं। वीतराग सम्यक्त्वरूप निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है— ऐसी भावना सहित वही शास्त्र, पुराण, तपस्या हो तो मोक्षका बहिरङ्ग सहकारी कारण

होता है और यदि निज शुद्ध आत्माके उपादेयपनेकी भावना नहीं है तो वह कुछ पुण्यका कारण बन जाय और मिथ्यात्व रागसहित हो तो पापबन्धका कारण होता हैं।

कमठ रुष्ट होकर घरसे चल दिया और उसने संन्यासियोंके बीच जाकर एक तपस्या करनेका ढोंग बना लिया था। एक मनकी शिला अपने ऊपर धरे हुए तपस्या कर रहे थे। तो वह तपस्या है क्या ? नहीं। कोई दूसरेका नाश करनेके लिए प्रभुकी पूजा करने आए तो वह पूजा होगी क्या ? नहीं। बहुतसे पुष्प चढाता जाय और यह भी कहता जाय कि यह भाई हमें बहुत हैरान करता है। इसका कुलनाश हो जाय तो क्या वहा भगवान्के दर्शन हो गए क्या ? नहीं हो गए। जैसे ऊपरसे बड़ा चिकना व सुन्दर घड़ा है और उसमे मल भरा है तो जो उसकी दशा हैं, वही मायाचार, असदाचारी और मलिन चित्त वाले पुरुषकी दशा हैं।

भैया ! कुटुम्बके लोग तुम्हारा कुछ भला न कर देंगे, इसलिए अपने आपकी बात सोचो कि हमें धन वैभव परिवारमे नहीं फंसना है। अपने आपको यही समझो कि मैं अकेला हूं, मेरा कोई साथी नहीं है। जैसा परिणमूँगा वैसा ही भोगना पडेगा। सो जो मलिन चित्त वाले हैं, वे विद्यानुवाद नामक दशमश्रुतको पढ़कर भी मोक्षमार्गसे च्युत हो जाते हैं, दुर्गतिके पात्र हो जाते हैं। इस कारण अनेक श्रम करके भी आत्माको जान लो। आत्मज्ञान कितना बडा है ? कुछ अन्दाज कर सकते हो ? सङ्गमरमर जडे हुए मकानसे बड़ा है क्या ? घरके पुत्र, स्त्री और परिवारसे बड़ा है क्या ? अरे ! आत्मज्ञान की तुलना तो किसी से भी नहीं की जा सकती है।

भैया ! यह तो स्वप्न है, व्यर्थकी चिंताकी बात है। किसी बातसे क्षोभ होता हो तो लो लात मारो, कुछ प्रयोजन ही नहीं है। तुम तो सुख पूर्वक अपना गुजारा कर सकनेकी हिम्मत रखते हो या नहीं ? नहीं रखते। तो जाओ, तुम्हारा रास्ता अलग है, हमारा रास्ता अलग है। क्या झंझट है और क्या चिंता है ?

'खीरसे संग, महेरीसे न्यारे।' यह एक कहावत है। भैया ! इसका मतलब जानते हो क्या ? दूधकी खीर बनती है और मठ्ठाकी महेरी बनती है। सो दूधकी खीरमे तो झट शामिल हो गए और मठ्ठा की महेरीसे अलग हो गए। इसी प्रकार परिवारके लोग हैं। जब तक सुख है, कुछ स्वार्थ निकलता है तब तक तो सङ्ग देते हैं और जहा स्वार्थ न सिद्ध हुआ, कुछ सुख न मालूम हुआ तो वे अलग हो जाते हैं। उनमे पड़कर अपनेको ही दुःख

उठाना पडता है। यदि कुछ अवधिज्ञान ठीक बना तो नर्कमें जाकर मही पता पडेगा कि अब हम नर्कमें आ गये हैं, अब इस विपत्तिमें मुझे कोई पूछने वाला नहीं है। दु:ख क्या ? सकट क्या ? क्यों चिंता करते हो ? जैन शासनको पाकर भी चिंता करते हो तो डूब गये। वस्तुस्वरूपकी यथार्थता बताने वाला सिद्धान्त पाया तो वस्तुको उल्टा-उल्टा मानकर दु खी क्यों होते हो ? आत्माका ज्ञान करो। इस आत्माके जान लेने पर सर्वकुछ ज्ञात हो जाता है। इसी बातको इस दोहेमें बताते हैं :—

जोइय अप्पे जाणिसएा जगु जाणियउ हवेइ।
अप्पह केरइ भावडइ विंविउ जेण वसेइ ॥ ९९ ॥

हे योगी ! आत्माके ज्ञात कर लेने पर यह सारा जगत ज्ञात हो जाता है। क्योंकि आत्माके केवल ज्ञान मे यह सारा लोक प्रतिविम्बित हुआ ठहरता है। हम तो दर्पण सामने रखे हैं। तुम देखते जावो पीछेके सब लोगोंको पर हम तो अपने सामनेके दर्पणसे ही पीछेके सब आदमियोंको, लडकोंको, बच्चोंको देख रहे हैं कि कौन क्या कर रहा है ? हम तो केवल दर्पणको ही देख रहे हैं और जितना तुम जान रहे हो उतना ही हम जान रहे हैं। वे सबके सब इस दर्पणमे प्रतिविम्बित हो गए। एक दर्पणको जान लिया तो सबको जान लिया। इसी प्रकार जगत्में जितने ज्ञेय पदार्थ हैं वे सब आत्मामे विम्बित होते हैं। सो आत्माको जान लिया तो सब कुछ जान लिया। यह आत्मतत्त्व जाना कैसे जाता है ? आत्मतत्त्व कहो या परमातत्त्व कहो, यह वीतराग स्वसंम्वेदन ज्ञानसे जाना जाता है। इस परमात्मतत्त्वको जान लिया जाय तो समस्त द्वादशाग आगम शक्ति सब कुछ ज्ञात हो जाती है। वडे वडे पुरुष भी राघव, पाडव अर्थात् श्री रामचन्द्र जी, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ये सब महापुरुष जिनदीक्षाको ग्रहण करके द्वादशांगसे बढ़ कर, द्वादशांगके उठनेके फलभूत निश्चय रत्नत्रयस्वरूप परमात्मतत्त्वके ध्यान में वह ठहरे तो उन्हें इस कारणसे वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानके द्वारा अपना आत्मा ज्ञात हुवा।

भैया ! अपने आत्माके विशद ज्ञान होते ही सर्व अर्थ समूह ज्ञात हो चुकता है। आत्मज्ञान करो। सतोष मिलेगा तो अपने आपके आत्मामें ही मिलेगा। शान्ति सुख, आनन्द, सर्व कुछ आत्माके जाननेसे ही मिलता है। कर्मोंका क्षय, कर्मोंसे छुटकारा, निपटारा, सब कुछ आत्माके ज्ञानमें ही है। निर्विकल्प समाधि परिणामसे उत्पन्न होने वाले परम आनन्द सुख रसका स्वाद होने पर यह पुरुष जानता है कि मेरा स्वरूप यह है चैतन्यमात्र। और ये देह रागादि है परतत्त्व, यों भेदविज्ञान होने पर आत्माको

जान लें। आनन्दके निधान अपने सर्वप्रयोजनभूत आत्मतत्त्वको जान लिया तो सब कुछ जान लिया। केवल जानना, किन्तु रागादिक इष्ट अनिष्ट बुद्धि न करना— ऐसी वृत्ति यदि अपने आपमें बनी है तो समझ लीजिए कि वह कर्मोंका क्षय करता है, मोक्षमे आगे बढता है। अनन्त आनन्दको वह प्राप्त ही कर लेगा। जिनको एकदम सब छोडकर जाना है। इस थोडेसे समयके लिए उनमें इतनी आसक्ति क्यों की जा रही है? कभी तो छूटेंगे ना। १०-२० वर्ष संग रहे, अव्वल तो कलका ही पता नहीं है। अगर अभी से ही इनमें हर्ष न माना तो इन्हे छोड़ने के समय क्लेश नहीं होगा।

भैया! सर्व कुछ बलिहारी है इसे आत्मज्ञानकी। इस कारण तन, मन, धन, वचन न्यौछावर करके भी यदि आत्माका बोध प्राप्त होता है तो वह सर्व कुछ वैभव प्राप्त कर लेता है। केवल मात्र जाननका काम है। जो जानने वाला है उसको जानो। जो जाननका स्वरूप है उसको जानो। केवल जाननका ही सदा पुरुषार्थ करना चाहिए। ज्ञानसे बढकर तप क्या होता है? आत्माको जान लेने पर सर्व कुछ ज्ञात हो जाता है अथवा यह आत्मा स्व परके रूपसे सारे लोकालोकको जानता है। जैसे कोई कहे कि चलो अमेरिका ले चलें, दिखायेंगे आपको कि वहा कितना अच्छा है? कहेगा कि हमने देख लिया। वहा जड़पुद्गल होंगे, रूप, रस गन्ध, स्पर्शके पिड होंगे। हम सब जानते हैं। इस प्रकार जिसका केवल आत्मासे प्रयोजन होगा वह कहेगा। सब अनात्माए इसके लिए पर हैं। इतने रूपसे सबको जान जाता है। इस तरह यह समस्त लोकालोकको जानता है। तब यह बात हुई ना कि आत्मा ज्ञात हो जाय तो सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

इस आत्माके जब वीतराग, निर्विकल्प त्रिगुप्तिरूप समाधिका बल प्रकट होता है यहीतो अव्वल रस केवलज्ञानकी उत्पत्तिमें बीजभूत है। सो इस बीजभूत समाधिके बलसे केवलज्ञान उत्पन्न होने पर यह समस्त लोक और अलोकका स्वरूप ऐसा ज्ञात होता है जैसा कि दर्पणमे प्रतिबिम्ब स्पष्ट ज्ञात होता है। इस कारण भी यह सिद्ध है कि आत्माके जान लेने पर सर्वज्ञान हो जाता है। इस दोहेमे इस बातको चार प्रकारसे दिखाया है कि आत्माके जान लेने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है। चार पद्धतियां कही गई हैं। इन चारों पद्धतियोंसे इस आत्माके मर्मको जानकर बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहका त्याग करके सर्वकुशलतासे निज शुद्ध आत्माकी भावना करनी चाहिए। यह इसका तात्पर्य हुआ। इस ही बातको समयसारमें बताया है। जो पुरुष अपने आत्मासे आबद्ध, अपृरस्य, अनन्य, अविशेष और आदि, मध्य व अन्तसे रहित देखता है तो वह सर्वशासनको देखता है। शासनका

जितना भी जो वर्णन किया गया है उनका सार इतना ही है कि तुम सबसे निर्मल ज्ञानमात्र अपने आत्मतत्त्वको जानो। यह केवल आत्मतत्त्व जब ज्ञात होता है तो इसके फलमें सर्वविश्व ही ज्ञात हो जाता है। इस ही बातका अब समर्थन किया जाता है।

अप्पसहावि परिट्ठियइ एहउ होइ विसेसु।
दीसइ अप्पसहावि लहु लोयालोउ असेसु ॥१००॥

जो पुरुष आत्माके स्वभावमें प्रतिष्ठित हैं उनके स्पष्ट तो यह विशेषता होती है कि आत्मस्वभावमें उनको सारा लोक अलोक शीघ्र दीख जाता है। अपना स्वभाव शीघ्र दीख जाता है और इसके प्रसादसे समस्त लोक अलोक शीघ्र दीख जाता है। तुम्हें चाहिए क्या? आनन्द ना, तो जिस विधिसे आनन्द मिलता है उस विधिसे क्या भय करना? आनन्द ही तो चाहिए। मोहके छूटनेसे आनन्द मिलता है तो मोहके छूटनेका भय क्यों करते हो? आनन्द तो वास्तवमें मोहके छूटनेमें ही है। पौराणिक पुरुषों पर निगाह करिये, राम कृष्ण आदि जब तक मोहके ससर्गमें रहे तब तक कितने-कितने कष्ट उठाये और जब सुमति जगी, वैराग्य बढा और निजब्रह्मके स्वरूपमें झुके तब वे समस्त सकटोंसे दूर हो गए। क्या कोई जन्म लेते ही भगवान् हो जाता है? जन्मके समय वह बलस्वरूप है। इसी प्रसगमें वह विरक्त है, शुद्ध है, ज्ञानी भी है फिर भी भगवान् नहीं है। जब सर्व बाह्यतत्त्वोंको छोड कर केवल ज्ञानस्वरूप अपने स्वभावमें प्रतिष्ठित होता है तब भगवत्ता प्राप्त होती है। इस मनको समझाना और इसे धर्मके प्रकरणमें लगाना यह बहुत बड़ा विवेक है।

भैया! स्नेहका फल तो क्लेश है। स्नेह करके किसीका भी पूरा नहीं पडता। यदि किसीसे स्नेह है तो वियोग के समयमें अत्यन्त क्लेश होते हैं। जितना सुख १०-२० वर्षमें पाया है वह सारा सुख वियोगके समय एक ही दिनमें खत्म हो जाता है और १०-१२-२० वर्षका दु ख मानों इकट्ठा होकर उस समय आता है। स्नेह ही बन्धन है। बधन और किसी दूसरी चीजका नहीं है। आपका शरीर सबसे अलग है। आपका आत्मा सबसे अलग है। आप अपने आपमें ही रहकर जितना चाहें विचार बना डाल सकते हैं। फिर बधन क्या है? मकानसे बध नहीं, परिवारसे बधे नहीं, वैभवसे बधे नहीं। आप छुट्टा, खुले, अकेले ही विराज रहे हैं ना। लेकिन भीतरमें जो कल्पना छायी हैं उन कल्पनाओंका तो ऐसा बधन है कि बधनके स्थानसे रंच भी हिल नहीं सकता है। बस, जो आत्मस्वभावमें प्रतिष्ठित हैं उनको तो बधन नहीं है और इस स्वभावके कारण उनमें इतना विकास होता है कि वे समस्त

लोकालोक को शीघ्र देख लेते हैं। अर्थात् वही बात हुई कि एक आत्माको जान लो तो सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

भैया! एक आत्माको ही न जान पाया तो सारी विडम्बनाएँ हो जाती हैं। अपने निजी घरका पता न हो तो पर घर डोलते फिरो। वहा-कोई साधन न दे देगा। विश्राम किया जा सकता है तो अपने घरमें ही किया जा सकता है। अपना घर वास्तविक क्या है? इस पर तो दृष्टि करें। मेरा घर मेरा ज्ञानस्वरूप है। जहासे कोई हटा नहीं सकता। मैं ही खुद भ्रमरूप होऊँगा तो हो जाऊँगा। मेरे क्लेशोका फल मुझे ही भोगना पडेगा। मेरा घर सर्वसुखसे भरपूर है। उसको तो छोड दिया और परद्रव्योंकी आशामें जुट गए। ये बाह्य समस्त चेतनपदार्थ जिनसे कुछ लेना न देना, भिन्न हैं। फिर भी ये दिन दहाडे लूटते चले जा रहे हैं। ये नहीं लूट रहे हैं, हम खुद पर चेतन अचेतनमें उपयोग फँसाकर लुटते चले जा रहे हैं। सब केवल अपने विषयकषायोंके साथी हैं।

एक सेठ थे। उनके चार लड़के थे। ५ लाखकी जायदाद थी। सब जायदादका उसने बँटवारा कर दिया और अपने हिस्से का १ लाख धन अपने कमरेमें भींतमें चुनवा दिया। अब सेठ जी बूढ़े हो गए, मरणासन्न अवस्था हो गई। पच लोग आकर कहते है कि तुम्हें दान करना हो, पुण्य करना हो तो कर लो। उस समय सेठजीकी जवान थक गई थी। भेंभें उनकी आवाज हो रही थी। बोल तो नहीं सकते थे। हाथका ईशारा करके बतला रहे थे कि देखो जी इन भींतोंमे रखा है वह सारा धन, उस धनको ले लें पच लोग और कहीं दानमे लगा दें। अब इस बात को पचों मे से कोई न जान सका कि यह इशारेसे क्या कहता है? लड़कोको बुलाया और पूछा, बच्चों यह तुम्हारे पिता जी क्या कह रहे हैं? बच्चोंने सब जान ही लिया था कि यह सब दानकी कह रहे हैं। पर बच्चे लोग क्या कहते हैं कि मेरे पिता जी साहब यह फरमा रहे हैं कि मेरे पास जितना धन था वह सब इन भींतोंमें खर्च कर दिया। अब मेरे पास कुछ नहीं है। वह सेठ यह सुन रहा था व सोच रहा था कि मेरी तो इच्छा थी कि पापसे धन कमाया तो अब अपने ही हाथसे अपने जीते जी इस धनको सुकृत कार्यमें लगा जायें, पर ये बेटे लोग उस बातको घुमा रहे हैं कि एक पैसा भी दानमे नहीं लगने देते।

सब प्राणी अपने विषयकषायोंके साथी हैं। मिला कोई आपको ऐसा निरपेक्ष बंधु जो कुछ उपेक्षा न रखे और आपके हितकी बात सोचा करे। छोटा बच्चा भी ऐसा न होगा। उसके भी खेलनेमे, स्वार्थमे बाधा हो गई तो आपसे बिगड़ जायेगा। कौन है ऐसा जो निरपेक्ष आपकी सेवा कर सकता

हो ? फिर जो तन, मन, तन पाया वह सब इन मोही, कुटुम्बीजनों पर ही न्यौछावर करने के लिए है क्या ? अरे उनका भी गुजारा चलावो और अपना भी मार्ग साफ रखो और परिवारको भी धर्मके मार्गमें लगावो। स्वार्थ की साधना, विषयपूर्ति किसी की कामना न रहे। यह जगत धोखेसे परिपूर्ण है। जैसे बच्चे लोग किसी लड़केको छकानेके लिए बिना बुनी चारपाई पर चद्दर तान देते हैं और कच्चे डोरेसे पाया से चद्दरका छोर कस देते हैं और आते हुए बालकसे कहते हैं आइए, बैठिये। वह बैठता है तो बैठते ही सिर और पैर बराबर हो जाते हैं। जैसे वह तनी सफेद चादर एक धोखा है इसी प्रकार ये चिकने चाकने वैभव, परिवार, शकलें ये सब धोखा हैं।

सिद्ध भगवानके आनन्दको कौन प्रकट करता है ? उनका आनन्द उनकी आत्मामें से ही प्रकट होता है। इसी प्रकार आपके आनन्दको कौन प्रकट करता है ? आपका आनन्द आपमें से स्वयं प्रकट होता है। यदि एक आत्माको जान लिया तो सब कुछ जाननेमें आ गया। कहते हैं लोग ना कि एक बड़े को पकड़ लो फिर सारा काम बन गया। तो जगत्में बड़ोंमें बड़ा अपना आत्मतत्त्व है। इस आत्मतत्त्वकी उपासना करो, प्रेक्टिकल, ज्ञानमात्र ही मैं हू—ऐसा परिणमन करके एक निजी पुरुषार्थ प्रकट करें तो शाश्वत सुख इसके प्रकट हो जायेगा। अब इस ही अर्थका दृष्टान्त के द्वारा समर्थन करते हैं।

अप्पु पयासइ अप्पु परु जिमि अंबरि रविराउ।
जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थुसहाउ ॥१०१॥

यह आत्मा अपने आपको और परपदार्थोंको प्रकाशित करता है। जैसे रविको रवि प्रकाशित करता है और परपदार्थोंको भी प्रकाशित करता है। हे योगी ! इसमें तुम कोई भ्रम न करो। यह वस्तुका स्वभाव है। जैसे मेघरहित स्वच्छ आकाशमें रविकी छवि, रविका प्रकाश अपनेको और परको प्रकाशित करता है उस ही प्रकार वीतराग, निर्विकल्प समाधिरूप कारण समयसारमें स्थित होकर मोहरूपी मेघपटलके नष्ट होने पर यह परमात्मस्वभावमय आत्मा छद्मस्थ वीतराग भावनाके ज्ञानसे अपने को और परको प्रकाशित करता ही है। जो अपने आपकी ओर झुके उसको सर्व सिद्धि होती है और जो परपदार्थों की ओर झुकता है उसका सर्व आत्मबल समाप्त हो जाता है। सो जैसे मेघपटलके नष्ट होने पर सूर्य सबको प्रकाशित करता है इसी प्रकार मोहके दूर होने पर यह आत्मा सर्व अर्थको प्रकाशित करता है और यह ही आत्मा पश्चात् अरहंत अवस्थारूप कार्य समयसाररूपमें परिणाम करके केवलज्ञानके द्वारा अपने को और परको

प्रकाशित करता है। ऐसा आत्मवस्तुका स्वभाव है। इससे किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिए।

भैया! ध्यानको अच्छा जमाने के लिए सीधा काम यह है कि जो जानन होता हैं उस जाननके जाननेमें लग जाये। यह जानन किस ढंगका हैं, यह जानन किस रूपका है, जाननके स्वरूपमें ही उपयोगको लगा दे तो यही कल्याणका प्रधान उपाय हैं और ऐसा करनेके लिए अपने जीवनमें यह लक्ष्य बनावो कि हमें तो ज्ञानका संचय करना है। ज्ञानके पीछे पड़ जावो, आर्थिक पोजीशन कैसी ही रहे, उस पर आत्मोद्धारका निश्चय नही है, आत्मोद्धार निर्भर नहीं है किन्तु ज्ञानबल जगे, अपना आत्मस्वभाव न्यारा हो, केवल ज्ञानस्वरूप जचे तो उससे निस्तारा होगा। इसलिए अनेक उपाय करके इस ज्ञानकी साधना करिये। ज्ञानकी साधना, ज्ञानके आश्रयोके सेवा करनेसे होती है। विद्याको पढना, शास्त्र सभावोंका आयोजन करना, त्यागी व्रती वर्गोंसे अपना सम्पर्क रखना, ये सब ज्ञान वृद्धिके लिए साधनकी बातें हैं। ईर्ष्यासे ज्ञान नहीं बढता, कन्जूसीसे ज्ञानवृद्धि की प्रगति नहीं होगी। बहुत क्या कहें? ज्ञान हो तो सदा आत्मामें निराकुलता है और ज्ञान न हो तो जहा हैं वहीं इसको आकुलताएँ होती हैं।

एक गावमे एक आदमी था। तनिक वह क्रैक माइन्डेड था। लोगोंने उसका नाम मूरखचन्द रखा था। तो जो आए वही मूरखचन्द कहे। सो वह परेशान हो गया और खीझ करके गांव को छोडकर चल दिया। हमें नहीं रहना है इस गांवमे। सबके सब हमें मूरखचन्द कहते हैं। गाव छोडकर गांवसे वाहर तीन मील पर पहुचा। तो कुछ आरामकी सास ली और जनाव एक कुवा पर बैठ गए। बैठे कैसे कि कुवाकी ओर पैर डाल दिया और मेड़ पर बैठ गया। इतनेमे एक मुसाफिर आया तो बोलता है कि कहो मूरखचन्द कैसे बैठे हो? वह था अपरिचित पुरुष उसकी शकल भी न देखी थी। तो झट वहासे उठकर उस मुसाफिरके गले लगकर कहा– मेरे यार यह तो बतलावो कि किसने मेरा नाम बतलाया है कि यह मूरखचन्द है। मुसाफिर कहता है कि मुझे किसी ने नाम नही बताया, किन्तु तुम्हारी करतूतने नाम बताया।

भैया! हमारी मूर्खतावों पर हसेगा कौन? अगर हस सकता है कोई अपनी मूढतावों पर तो केवलज्ञानी भगवान हँस सकता है। वे सिद्ध हो गए हैं सो हसते हैं और जैसे चोर-चोर मौसेरे भाई हैं इसी प्रकार ये मोही, मोही, मोही हैं, एक दूसरेका समर्थन कर रहे हैं। और परस्परमें प्रोग्राम बनाए जा रहे हैं। तुम्हें चाहिए क्या? तुम अपने ऐसे धनका संचय करो

जो साथमें जाए। सब सही बात मिलाई जा रही है, पर ऐसा कोई नहीं मिलता जो अपनी गर्दनको झुकाकर जरासा अपने आपको निहार तो ले। तू स्वयं आनन्द अमृतसे भरा हुआ है। किन्तु सब एक दूसरेको सपोर्ट करते चले जा रहे हैं। जो पुरुष अपने आत्माका ज्ञान करते हैं उनका ज्ञान चारों ओर असीम बढ़ जाता है। यह आत्मा अपनेको और समस्त परपदार्थों को प्रकाशित करता है। जैसे आसमानमें सूर्यकी किरणें सबको प्रकाशित कर देती हैं। हे योगी! तुम भ्रम मत करो। यह वस्तुका स्वभाव है।

जैसे मेघरहित आकाशमें सूर्य अपनेको प्रकाशित करता है और परको प्रकाशित करता है उसी प्रकार वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप निज ज्ञायकस्वरूपमें स्थित होकर समयसारमें स्थित होकर मोहरूपी मेघ पटलके विनष्ट होने पर यह परमात्मा छद्मस्थ अवस्थामें भी वीतराग भेदभावनाके ज्ञानके बलसे आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे अपनेको और परको प्रकाशित करता है। यही पीछे अरहंत अवस्थारूप कार्य समयसारसे परिणम कर अर्थात् अरहंत बनकर केवलज्ञानके द्वारा अपनेको और परको प्रकाशित करता है। पहिले तो समझलो कि यह मैं हू और इसके अतिरिक्त सर्व पर हैं। इन पर-पदार्थोंको भिन्न-भिन्न जाननेकी क्या जरूरत है? जान लो एक स्वभावमें कि ये सब पर हैं। फिर केवलज्ञान होने पर स्व और पर समस्त पदार्थोंको एक साथ प्रकाशित करता है। यह आत्मवस्तुका स्वभाव है। इसमें कोई संदेह न करो।

इस दोहेमें यह बतलाया गया है कि जो केवल ज्ञानादिक अनन्त चतुष्टयके व्यक्तिरूप कार्य समयसार है वह ही हम और आप सबको उपादेय है। पाने योग्य चीज क्या है ढूंढ लो। सब जगह ढूंढनेके बाद अतमें खुद में ही लो यह नवाब साहब बैठे हैं। यह है चैतन्यस्वरूप परमात्मतत्त्व। उस पर दृष्टि हो तो सर्वसंकट दूर हो सकते हैं। संकट हैं कुछ नहीं। बाहरमें दृष्टि लगाई तो संकट बन गए। यह जीव चाहता कुछ है और होता कुछ है। इसकी बात न चल सकेगी। जैसा यह चाहता है वैसी पूर्ति इसकी न हो सकेगी, अब यहां यह भी बतलाया ना कि कार्यसमयसार उपादेय है और उसका मूल उपाय है कारणसमयसारकी दृष्टि। वह कारणसमयसार खुद है इस ओर आवो, मोहके फंदको तोड़ो। मोहके फंदमें पड़कर कई वर्ष बाद भी हाथ कुछ न आयेगा बल्कि गांठसे जायेगा। इसलिए ज्ञानसाधना द्वारा अबसे ही अपने पर दया करो। अब इस ही बातको और व्यक्त करने के लिये एक दृष्टान्तमें कहते हैं कि—

तारायणु जल विंबियउ णिम्मलि दीसइ जेम।
अप्पए णिम्मलि विंबियउ लोयालोयवि तेम ॥१०२॥

जैसे जलमे तारागण प्रतिविम्बित हो जाते हैं उसी प्रकार निर्मल आत्मामें ये लोकालोक प्रतिविम्बित हो जाते हैं। इस जीवके दु खका कारण मुख्य तो इच्छा है और उसका सहकारी है ज्ञानकी कमी। किसी पुरुषके ज्ञानकी कमी न हो तो इच्छा नहीं हो सकती। सर्वज्ञान होता है तो इच्छा काहेकी। पता नहीं वह चीज मेरे पास आयेगी या न आयेगी, ऐसी दुविधा मे इच्छा उत्पन्न होती है। ज्ञान हो गया, फिर इच्छा क्या ? तो इस इच्छा डाकिनीका सहकारी कारण ज्ञानकी कमी है। यह ज्ञान जितना आत्मप्रदेश है उतनेमें ही रहता है। मगर इसमे सारा लोक और अलोक प्रतिविम्बित हो जाता है। दर्पण चार छ अगुलका ही है मगर प्रतिविम्बि जो रहता है वह दस पद्रह हाथका पदार्थ प्रतिविम्बित हो रहा है। एक थाली जो एक डेढ वेथा की है उसमें कितने ही तारागण प्रतिविम्बित हो जाते हैं। तारागणोंका तो हजारों मीलका माप होगा। हजारों मीलमें फैले हुए तारागण एक वेथा लम्बी थालीमें प्रतिविम्बित हो जाते हैं। यह तो दृष्टान्त हैं। पर आत्माका ऐसा विलक्षण प्रताप है कि यह एक जगह है, पर लोकालोक इसमें प्रतिविम्वत हो जाते हैं।

भैया ! सुख किसी दूसरोसे मिल नहीं सकता है। या तो ज्ञानसे ही आनन्द लूटो या स्त्री पुत्र वन इनके राग और कल्पनाका ही स्वागत कर लो। दो वाते एक साथ नही हुआ करतीं या मोक्ष ही पालो। मोक्षमार्ग पर ही चल लो या मोह वनाकर ससारी पदार्थोमे ही अपना अधकार पूर्ण उपयोग वनालो। क्या रखा है इन वधनोंमे ? अरे इन वधन आदि द्रव्योंसे क्षोभ पा रहे हैं तो इन बंधनोंको छोड़ दो। वच्चे लोग भी भावोंके लड्डू पेड़ा वनाकर कंकड पत्थरकी पगत किया करते हैं। धूल परस दिया तो लो यह बुरा है। कुछ मोटा कंकट है तो लो ये वूँदी है। कुछ ढेलासा हुआ तो लो ये लड्डू हैं। वे बच्चे अपने भावोको ही वनाकर प्रसन्न रहा करते हैं। यद्यपि ऐसी अपनी वात हैं मगर उत्कृष्ट अभीष्ट भाव वनाकर प्रसन्न रहो।

भाई यद्यपि शरीरका वधन छूटा हुआ नहीं है, कर्मोंके वधन से हम आप जुदा नही है। हम बुरे फसे है। पता नही अभी अच्छे भाव हैं इस ढगका भी विश्वास नहीं है। एक सम्यग्दृष्टी ऊँची श्रेणीमे चढकर ग्यारहवें गुणस्थानसे भी गिर पड़ता है, ऐसा विकट यह संसार वंधन हैं, लेकिन परवाह नहीं है। इस वधन को तोडनेकी कुञ्जी तो एक ही है। अपने शुद्ध ज्ञान [illegible] अपना निवास वनाला। दूसरी औषधि ही नही है।

आनन्द लो, सत्य आनन्द लो। छोटे आनन्दका संकोच भी न करो। जैसे गाड़ी आनेका टाइम है और कुछ मुसाफिर या रिश्तेदारोंसे मिलनेके कारण सत्कारके कारण बैठ गए, तो बैठ लो। गाड़ी तो छूट गई। तो ऐसा ही यह जीवन चला जा रहा है। यह तो बहुत मूल्यवान् धर्मसेवन करने का अवसर था और इन इने गिने १०-२०-४० मोहियोंमें ही फँस कर अपनी प्रगतिसे चूक जाये तो लो गाड़ी तो छूट जायेगी। अब मिल लो उन मोहियोंसे, इन मोहियोंसे प्रीति अधिक है तो कुछ डर नहीं है। तुम प्रभु ही तो हो। खूब इन मोहियोंसे मोह करलो। खब डटकर मोह कर लो। यहां क्या मिलन हो रहा है? आपका शरीर अलग बैठा है, इन मोहियोंका शरीर अलग बैठा है। यह क्या मिलन है? बढ़िया मिलन तो वह है कि शरीर एक हो और उसके अधिकारी जीव अनन्त हों। ऐसा मिलन बढ़िया मिलन कहलायेगा। पसद करो अच्छा यह मिलन क्या मूल्य रखता है। हम आपके शरीरसे प्रेम चाहें और आपका शरीर अलग रहा, हमारा शरीर अलग रहा, हम और आप एक नहीं हो पाते हैं तो यह मिलन क्या मिलन है? निगोद पर्यायमें एकमें एक मिल जायेंगे। शरीर एक मिल गया और अनन्त जीव उसके अधिकारी हैं तो अब मिल लो खूब। यह मिलनेका फल है।

विवेकी पुरुष वही है जिसकी अन्तरमें अलौकिक दुनिया चलती है। भीतरसे परमार्थ आत्माके लिए रहता है और ऊपरसे यथार्थ धर्मके लिए रहता है। विवेकी पुरुष वही है जिसको जीवनमें कभी आकुलता नहीं होती। सम्यग्ज्ञानी पुरुषमें इतना साहस है कि समय आए और सब छोड़ना पड़े तो सबको छोड़नेमें विलम्ब नहीं करता। बड़े-बड़े महाराजा लोग जाते हैं गुरुवोंके दर्शन करने के लिए ठाठ बाटसे, सेना सजाकर शृङ्गार करके और जितने आभूषण हों सब पहिनकर बड़े साजसे जाते हैं साधुवोंके पास दर्शनको और ज्ञानकी मणिका चमक जाये तो वह मुकुट हार सब त्याग करके वहीं निर्ग्रन्थ हो जाते हैं। यह है सम्यग्दृष्टि का सार। चाहे ऐसा जीवनमें कभी न कर पाये, किन्तु अपने उपयोगसे तो पूछो क्या अपनेमें इतना साहस है कि अवसर यदि आगे तो सब कुछ त्यागकर हम अपने एकत्वस्वरूपको सभाल सके। जिसमे इतना साहस है उसको ही श्रावक कहते हैं, उसको ही उपासक कहते हैं। गृहस्थ उसका नाम है जिसके यह भावना रहती है कि मैं मुनि बनूँ। तो क्या केवल वचनोंसे कहने की बात है। मुनि बननेका अर्थ यह है कि मैं कब सकल सन्यास करके निजी शुद्ध एकत्व स्वरूपको देखूँ।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी गृहस्थ तो यहां बेफारसा रहता है। चाहता है

आत्मध्यान, उसकी पूर्ति नहीं है। चाहता नहीं है परिवारका राग, उसका उसे बखेडा लग रहा है। उस परिवार को वह नहीं चाहता है। ज्ञानी गृहस्थ बच्चेको गोदमें लेकर खिला रहा है पर ध्यान इस ओर है कि इन परवस्तुवों की आपत्ति से छूटकरमै कब अपने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मामें रमण करूँ ? जब यह भावना है तो बच्चे को खिलानेका शौक है क्या ? नहीं, और रह रहा है घरमें जो भावना कर रहा है उसका आनन्द है क्या ? वह तो दोनों आनन्दों से गया। ज्ञानी गृहस्थ न परिवारका मजा लेता है और जो उसके अन्तरङ्गकी भावना है न उसका आनन्द उसे मिलता है। तो क्यों भैया ! इससे तो मिथ्यादृष्टि ही चोखा होगा। वे मिथ्यादृष्टि कमसे कम लड़कोंका तो डट कर आनन्द पा रहे हैं। इस सम्यग्दृष्टी को तो न रागका आनन्द आया और न वैराग्यका आनन्द आया। तो क्या सचमुचमे वह ज्ञानी गृहस्थ बेकार है ? नहीं। इस सम्यग्ज्ञानीके मूलमे ऐसा सम्यग्ज्ञान पडा हुआ है कि कैसी भी स्थितिमे हो सब जगह वह अनाकुल रहता है। इसकी प्रकृति ही ऐसी है।

बरुवासागरमे एक सेठ मूलचद जी थे। तो उनके यहा एक नौकर था। उसका हँसनेका स्वभाव बहुत था। बात बात पर हसता था। मनुवा नाम था। सो उनकी सेठानीके बीमारी चल रही थी। एक दिन वे गुजर गई। सो गुजरने पर तो बहुतसे काम करने पड़ते हैं, चदन लाना, कफन लाना, घी लाना आदि। तो कहा कि मनुवाको बुलावो, वह बाजारसे कफन, चदन आदि ले आवे। वह न आया। जब बड़ी देरमे वह आया तो सेठ जी ने कहा कि तू कहा गया था ? यहा सारा काम करना है। बोला, सेठ जी हमारा हँसनेका स्वभाव है, आपकी तो मर गई सेठानी और मै हस देता तो अच्छा न होता। सेठ जी भी उसकी बातको सुनकर हँसने लगे।

तो ज्ञानीके ऐसी विरक्तिकी प्रकृति पड़ी हुई है। लोगोंमे ऐसा जँचता है कि जैसे और गृहस्थ है वैसे ही यह है। इसने कौनसा काम किया ? वैसी ही दुकान है जैसी कि एक मिथ्यादृष्टी की है। जैसा एक मिथ्यादृष्टी देख रहा है वैसा ही यह देख रहा है। जैसे झझट औरोंके लगे हैं वैसे ही इसके भी लगे हैं, किन्तु ज्ञानी अपने भीतरमे अपने साहसपूर्ण ज्ञानको निहारता है, जिसके बल पर वह स्वाधीन है, सुखी है।

इस जगत्में दूसरे जीवोंसे न कुछ लेना है, न कुछ देना है, न साथ आये हैं, न साथ जायेंगे, न कोई सम्बन्ध है, फिर इस मोही जीवको दूसरे जीव प्रियतर क्यों लग रहे हैं ? प्रियतर ही नहीं, प्रियतम लग रहे हैं। जो कुछ है, यही तो हैं। यही मेरे हैं और कोई कुछ नहीं है। अरे इस मिथ्यात्व

की आडको तोडे बिना जीवको शिवमय पद नहीं मिल सकता। व्यर्थका यह झंझट और तुम ममता करते हो तो वे खुश हैं, और न ममता करो तो वे खुश हैं। वे आनन्दसे अपना जीवन बिना रहे हैं। तुम्हारी चितासे घरका पालन पोषण नही हो रहा है। उनके पुण्योदयसे उनका पालन यों ही हो रहा है। तुम उनकी चिंता करो तो क्या, न करो तो क्या ? यह आत्मा जब ज्ञानबलसे अपने आपको रागद्वेषरहित अनुभव करता है तो इन राग द्वेषविकल्पजालोसे रहित इस आत्मतत्त्वमें सारा लोकालोक प्रतिबिम्बित हो जाता है।

भैया ! वही बात कल कही, वही बात परसों कही, वही बात आज कही, फिर भी नई-नई सी बातें मालूम पड़ रही हैं। 'दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक्' यह न्याय सूत्र है। जानी हुई चीजको बारबार जानना न्यायमें दोष बताया है। जान लिया कि यह चौकी है, यह चौकी है, यह चौकी है। कोई सुनता होगा तो पागल बतायेगा। जानी हुई चीजको बार बार जानना अप्रमाण है। पर जानी हुई चीज भी यदि विस्मृत हो जाये तो उसका जानना अप्रमाण नहीं है, इस आत्मतत्वको रोज पौना घटा बैठकर जानते हैं, सुनते हैं, पर २३॥ घटेमें वह सब भुला देते हैं। जब भूल गए तो वही बात फिर करलो क्या हर्ज है ? उसमें कोई दोष नहीं है। कल वही भोजन किया। आज भी वही किया और कल भी वही करेंगे, क्योंकि वह भोजन पच चुका। वह भोजनके रूपमे पेटमें कहा है, तो फिर भोजन करना पड रहा है और कल भी पूजनको, दर्शनको आए और आज भी। यह क्या है कि रोज-रोज आते हैं। अरे आगए देख लिया, ऐसी मूर्ति है, हो गया। अरे देखा न हो तो आयें देखने कि मूर्ति कैसी है ? यह क्या कर रखा है कि रोज-रोज सुबह हुआ नहीं कि पूजामें पहुच गए, फिर दूसरा दिन हुआ नहीं कि पूजामें पहुच गए। यह क्या कर रहे हैं ? कल देखा था, फिर भूल गए। क्या करे, कि वह देखा अनदेखा बन गया। उस बीचके पीरियडके कारण वह अनदेखा बन गया, तो फिर देखा बनानेको आते हैं। तो यह आत्मा जब निर्मल बनता है तो उसमें यह समस्त लोकाकाश प्रतिबिम्बित हो जाता है।

अब यह बतला रहे हैं कि यह आत्मा और परपदार्थ जिस ज्ञानसे जाने जाते हैं, जिस आत्माके द्वारा जाने जाते हैं उसको तुम स्वसम्वेदन ज्ञानके बलसे जानों। अपने इस जीवनमें कभी तो हिम्मत बनाओ कि हमें कुछ नहीं सोचना है। जो बिगड़ना होगा बिगड़ जायेगा। कहां जायेगा ? जब ये उसके मत्री प्रेसीडेन्ट कुछ साल पहिले जब यहा आये और जब यह सुना कि उनके स्वागतमें लाखों रुपया खर्च हो गए, ऐसा सुना था तो लोग

यह सोचते थे कि भारत ने २५ लाख, ५० लाख व्यर्थमें खर्च कर दिये। थोडी देर बाद ऐसा ध्यान आया कि खर्च कर दिया तो कहा गया ? जिन्होंने काम किया वे भारतके ही तो हैं। उन्होंने ही तो खाया। जिन्होने झालर बनाई, बिजली जलाई और और जिन्होंने शृङ्गार किए उनमें ही तो वह पैसा लगा। वे भारतके ही तो थे। भारतका पैसा भारतमें ही रहा। कहां गया ? तो ऐसा ही मानलो कि परिवार भी चला जाये, धन भी चला जाये तो सब चला जाने दो, लोकमें ही तो है सब। यदि हम आज मनुष्यभवमें न होते और होते किसी गधा सूवरके भवमें, तो यहाकी चमक धमक, चटपट अटपट क्या थी हमारे लिए ? चमत्कार चांदनी मेरे लिए कुछ न थी।

भैया ! लो एक दो मिनटके लिए हो बात कह रहे हैं, केवल २ मिनटके ही लिए अपने अन्तरमें से सारा भार निकाल कर फेंक दो। केवल दो मिनट की बात है। अपनेको निर्भार अनुभव करलो। अरे भाई कैसे निर्भार अनुभव करले ? घरके इन १०-१५ जीवोका तो हमारा ही आधार है। अरे नहीं है आधार। उनका तुमसे अधिक पुण्य है कि वे तो मजेमें आरामसे बैठे हैं और श्रम करना पड़ता है खुदको, आपको। उनका बुरा कुछ नहीं होगा। यदि उनका बुरा भी होगा तो उनसे अधिक बुरा आपका अपना होगा। क्योंकि आप पुण्यहीन हैं और जिनकी चिंता करते हो वे आपसे पुण्यमें अधिक हैं, आपको उनकी चिंता करनी पड़ी, इसलिए आपसे अधिक पुण्य उनका है जिनकी चिंता करते हो। केवल २ मिनटकी बात कह रहे हैं। अपने मनको समझा बुझाकर एक दो मिनटको निर्भार तो बन जावो। अपने ज्ञानका प्लेटफार्म क्लियर तो कर दो। केवल २ मिनटकी बात है। इन दो मिनटोंमें ही यदि आपको सहजस्वरूप ज्ञानज्योति विद्युतकी तरह झलक दिखा दे तो सदाके लिए निहाल हो जाओगे।

उम्र तो सारी पडी हुई है मोहके लिए। हम आपको धर्मके लिए कम वक्त है और मोहके लिए कम वक्त नहीं है। मोहके लिए तो सारी जिन्दगी पड़ी है। पर कभी तो दो मिनटके लिए अपनेको निर्भार अनुभव करो। यदि यह जीव अपनेको निर्भार अनुभव करले तो ऐसा ज्ञान प्रकाश प्रकट होगा कि जिसमें अलौकिक आनन्द मिलेगा। और फिर आप उसे सदा स्मरण ही करते रहेंगे। उस आत्माको जिस आत्माकी खोजके लिए बडे-बडे महाराजाओंने सारी विभूतिका त्याग किया, उस आत्माकी खोज गृहस्थीमें भी की जा सकती है और साधु पदमें भी की जा सकती है। यह तो ज्ञान है। यदि अज्ञानकी योग्यता है, मोहका कलक है, और यदि वह सकल सन्यास भी करले, साधु पद भी पा ले तो भी वहां क्या होगा ? जिसके तेज

जुकाम है, नाक वह रही है, ऐसे पुरुषको साबुनसे नहलाकर बढिया रेशमी कपडे पहिनाकर, सिर पर चदन, इत्र आदि लगाकर बैठाल दें, तो क्या होता है ? अभी १॥ मिनटके बादमे नाककी बत्तिया निकलेंगी। अज्ञानकी योग्यता वाले पुरुष बडा व्रत, तप, सयम भी करते हों, मगर मोक्षमार्गके हकमें उनकी क्या उठती है ? वे तो ससारके खम्भा ही बने हुए हैं। इस अज्ञानने ही हम आप सबको बरबाद किया है।

भैया ! गुप्त ही गुप्त, भीतर ही भीतर अपना अनुभव करलो। अकेले अपने को जान कर, सर्वपदार्थोंमें जो होता हो, हो। किसी पर वास्तवमें अधिकार भी नहीं है। सब पदार्थोंका स्वरूपास्तित्व जुदा जुदा है, स्वतन्त्र, स्वतन्त्र है। क्या होता है ? एक बार भी तो अपने को निर्भार अनुभव करो। कोई साझेदारीकी दुकान है और कुछ साझेदारी से जरा मन बिगड गया है और इस समय यदि कुछ स्पष्ट बात कह देते हैं तो इसमें १५ हजार का टोटा पडेगा तो दब रहे हैं, अशात हो रहे हैं, व्याकुल हो रहे हैं और कहो इस सकोचमें १५ के बजाय २५ की सख्या हो जाये और हिम्मत करलो कि मेरे १५ तो गए, स्पष्ट चर्चा करलो तो व्याकुलता भी खत्म हुई, सही मार्ग भी आया और देखो अब चिंता भी नहीं रही, क्योकि पहिले ही मान लिया कि अब साहस करो और सुखी होओ।

कितनी चिंताएँ हैं अपने को। जरा एक कापीमें तो लिख लो। अमुक बीमार है, न जाने यह मर जायेगा तो क्या होगा, अमुक मुकदमा है, कहो इसमें १० हजार चले जायें, अमुक घरमें बिगड रहा है, न जाने यह रूठ ही जाये। एक बारमें ही सबको कबूल लो। वैभव गया भाडमें, यह गुजरता है तो गुजर जाये जितनी भी अनिष्ट शकाए हैं उन सबको कबूल करलो और एक औषधि पी लो कि आखिर ये सब परद्रव्य ही तो हैं। इनमें यदि कुछ हो गया तो क्या हुआ, कौनसी बात मेरे स्वरूपमें घट गई। किसी भी प्रकारकी बात सामने आए तो अपनेको निर्भार अनुभव कर लो। केवल एकत्व स्वरूपमय ज्ञान प्रकाशमात्र, आकाशकी तरह अमूर्त निर्लेप अनुभव करलो। इससे ही प्रभुताके दर्शन होते हैं। उस प्रभुताकी भेंट होने पर फिर यह निश्चित हो जाता है कि अब ससारके जन्ममरण न रहेंगे। तो जिस आत्माको जान लेने पर ससारके सारे सकट टल जाते हैं, आचार्यदेव इस उत्थानिका में कहते हैं कि तुम उस निज आत्मतत्त्वको स्वसम्वेदन ज्ञानके बलसे जानो। केवल जाना ही क्या, अपने आपमें उसको उस रूपमें अनुभव करते हुए समझो। जैसे कोई चीज बनी हो ना। बढिया इमरती बनी हों तो क्या कहते हैं ? दूसरे मित्रसे कि अजी जरा इस इमरतीको देखो। उसका

अर्थ इतना निकला कि मित्र ने मुँह पसारा और खा लिया। अरे तुमसे देखने को कहा था कि इस इमरतीको देखो और तुमने तो खा डाला। इमरती का देखना आखोंसे होता ही नहीं है, वह तो खाकर ही होता है। सो कहते हैं कि जरा अब इस निज आत्माको जानलो, तो इसका जानना इन इन्द्रियोंसे होता ही नहीं है। उस आत्मतत्वको स्वसम्वेदन ज्ञानके बलसे अपने आपके स्वरूप को चखाकर, अनुभव करना ही नाम आत्मा का जानना कहलाता है। सो कह रहे हैं कि तुम उस आत्माको स्वसम्वेदन ज्ञानके बलसे जानो, इस प्रकारका अब कथन करते हैं।

अप्पु वि परु वि वियाणइ जे अप्पे मुणिएेण।
सो जिय अप्पा जाणि तुहु जोइय णाणबलेण ॥१०३॥

जिस आत्माको जाननेसे यह आत्मा भी और समस्त पदार्थ भी जाने जाते हैं उस अपने आत्माको हे योगी! अपने आत्मज्ञानके बलसे जानो। आत्मा को छोड़कर परवस्तुवोंको ही जाननेमें लग जावो तो, न तो परपदार्थोंका पूरा ज्ञान हो सकता है और न खुदका ज्ञान हो सकता है और परपदार्थोंका लगाव छोडकर केवल निज आत्मतत्त्वका ज्ञान करे तो इन समस्त परपदार्थोंका ज्ञान हो जायेगा और अपने आपके आत्माका भी ज्ञान हो जायगा। पर किस विधिसे आत्माको जानना चाहिए जिसमें सर्व कल्याण हो। वह विधि है वीतराग, सदा आनन्दमय एक स्वभावकी दृष्टि। लेकिन सब केवल अपनेको ही जानते हैं परको नही जानते हैं, मगर सभी उपयोगमें परको जान रहे हैं, निजको नहीं जान रहे हैं सभी जीव अपने आपको जानते हैं। कोई अपने को समझे कि मैं मनुष्य हू, मैं नारकी हू, मैं तिर्यञ्च हू, मै देव हू, मैं पुरुष हू, मै स्त्री हू, मैं धन वाला हू, मैं गरीब हू, मै समझदार हू, मै परिवार वाला हू, नाना प्रकारसे अपनेको माने तो भी अपने को मानना है, तो है कुछ।

कोई यदि यह कहे कि यह मेरा घर है तो इसका क्या अर्थ होता है कि यह, यह है, मै मैं हू, और फिर यह मेरा है। क्या कोई यों कहता फिरता है कि यह घर मै हू? क्या कोई ऐसा बोलता है? नहीं। तो इतनी बुद्धि तो सबकी व्यवस्थित है, इतनी गनीमत है जो यह नहीं मान रहे हैं कि मै घर हू, सोना हू, चादी हू इतनी तो गनीमत है। यही तो मान रहे हैं कि यह सोना मेरा है। इसमें इतनी बात तो आ गई कि यह सोना, सोना है और यह मैं मैं हू। किन्तु यह है मेरा। मेरा माननेमें भी मिथ्यात्व तो है पर थोड़ा भेद है। शरीरके बारेमें दोनों ही मान्यताएँ चलती हैं। कोई मानता है कि यह शरीर मेरा है; कोई मानता है कि यही मै हू, दोनों तरहसे चलता

है, पर घर परिवार सोना चांदी इनमें यह नहीं चलता कि यह मैं हूं, यह मेरा है यह कहा जाता है। तो अपनेको कुपथमें ले जानेका निमित्तभूत पदार्थ है कोई अधिकतया तो वह शरीर है। बस, घोड़ेमें चाल तो है मगर वह ऊबड़में चल रहा है। उसकी लगाम मोड़ दो अच्छी जगह चला जायगा। तो इसमें चाल तो है कि किसीका विश्वास करे, किसीको हितरूप माने, किसीको शरण समझे, किसीमें रम जाय, यह इसमें चाल तो है मगर ऊबड़में चल रहा है कि हम अपना शरण और हितको माने तो परिवार को। हम रमते तो हैं विषयोंमें, तो रमनेकी आदत तो है हमारे और जानने की भी आदत है, और किसी-किसीके हित और श्रद्धा भी करनेकी आदत है पर ऊबड़में लग रहे हैं। अब अपनी दृष्टिकी लगाम मोड़ दो। भेदविज्ञान करलो, अपने अमृत निधान आनन्दमय ज्ञानज्योतिमें बदल जावो बजाय मोही जीवोंसे हित माननेके। एक इस निर्मोही स्वभाव ज्ञानतत्त्वको हितरूप मानलो। इस घोड़ेमें चाल तो है पर चाल बदल लो। काठके घोड़ेमें चाल ही नहीं है।

कोई लड़के लोग दोनों टांगोंके बीचमें एक लाठी ले लेते हैं और पीछे से उस घोड़ेको मारने जाते हैं, चलो घोड़ा टिक् टिक्। अरे उस घोड़ेमें कुछ चाल ही नहीं है तो कैसे चले ? और इस घोड़ेके तो चाल है, चालको मोड़ दीजिए बढ़िया काम कर जायगा। तो हम और आपके उपयोगमें, मनमें चाल है, बस चालको बदल दें। अच्छा थोड़ा अपने भीतरमें विचार करें कि १०-२० वर्ष करते हो गए, अब तक मोहमें कितना अन्तर पाया ? कुछ तो पाया होगा। अगर मोहमें कुछ अन्तर न पाया तो सब व्यर्थ हो गया। कुछ तो मोहमें अन्तर होना चाहिए। ऐसा न हो कि ज्यों-ज्यों आयु घटती जाय त्यों-त्यों गुस्सा बढ़े, घमड बढ़े, मायाचार बढ़े, लोभ बढ़े। यह नहीं होना चाहिए। आयु ज्यों-ज्यों घटती जाय त्यों-त्यों क्षमाका माद्दा हो, शान्ति बढ़े, सरलता बढ़े, निर्मलता बढ़े तो भैया यह दुर्लभ नरजीवन सफल है और उल्टा ही काम बने तो इस नरजीवनसे क्या लाभ ?

एक निज आत्माको जान लो और उसके रुचिया बनो। हित नहीं है, धोखेमें मत आवो। सच मत मान लो। यह सब मोहकी नींदका स्वप्न है। हम ऐसे घर वाले हैं, ये मोहके स्वप्न हैं। ये तुम्हारे रंच भी कुछ नहीं हैं। तुम्हारा तो एकमात्र आत्माराम है। इस निजतत्त्वको वीतराग ज्ञानानन्दमय स्वभावी परमात्माको जानो तो सर्व विश्व जाननेमें आयगा। उस आत्मामें द्वेष रहित निर्विकल्प स्वसम्वेदन ज्ञानकी भावना उत्पन्न करके, परमानन्द के रसमें तृप्त होकर, तनमय होकर उस आत्माको भली प्रकार अनुभव करो,

पर अपनी दशा पर खेद तो मानों। कैसा हठ विकल्प किए हैं। अव्वल तो यह भी निश्चित नहीं है कि एक सिद्धचक्र विधानमण्डल भी रचा हो और ८ दिन तक शन्तिसे रह सके। क्रोधकी मात्रा प्राय बढ जाया करती है। तुमने यों नहीं किया, तुम काम बिगाड दोगे, तुम नाक कटा दोगे। इस तरह क्रोध बढ जाता है। अव्वल तो यह निश्चय नही है कि जितनी देर विधान हैं उतनी देर ईमानदारीसे तो कुछ करे। ईमानदारीके मायने कोई कितना ही कुछ करे सब क्षमा। अपनी शान किसे दिखाये ? प्रभुकी आराधनामे ही रत रहनेकी ईमानदारी रखो।

आठ दिनको कोई विधान माने तो समझो ८ दिन शान्त रहना है। हम आठ दिनको ही कहते है कि उतने दिनोमे ही क्रोधकी मात्रा बढ जाती है। उन ८ दिनोकी बात तो जाने दो, अभी यहांसे पूजा करके निकले, दरवाजेसे बाहर गए और कोई भिखारी मिल जाय, कहे बाबू कुछ हमें खानेको दे दो, तो कहेंगे अबे हट, जानता नहीं कि शुद्ध कपडे पहिन कर आए है। अरे वहां मन्दिरमे तो कह रहे थे कि 'आत्मके अहित विषय कषाय, इनमे मेरी परिणति न जाय। मैं वह हू जो है भगवान, जो मै हू वह हैं भगवान। सब जीव हैं एक समान' और मन्दिरसे निकले तो यह आफत आई अरे इस तरहसे धर्म कहां है ? यह मदिर तो धर्मका साधन है, और इसे ही धर्म मान लिया जिसका साधन हैं उसे धर्म नहीं माना इतना ही फर्क है। धर्म है आप की आत्माकी परिणति। धर्म मन्दिरमे नहो है, धर्म मूर्तिमे नहीं है। हमारा धर्म शास्त्रोंमे नही है, हमारा धर्म दूसरे गुरुमें नहीं है। पर हमारे धर्मके विकासके ये सब साधन हैं। इनमे लगकर हम अपना काम निकाल सके तो निकालें। पर धर्म तो आत्माकी परिणतिका नाम है, निर्मलताका नाम है। शान बहुत-बहुत रखते है और फिर भी १०–२० बार शान धूलमे मिल जाती है तो ऐसी हिम्मत बनालो कि रही सही शान भी धूलमे मिल जाय और इसे छोड़ निर्दोष वीतराग सहज परमात्मतत्वकी भावना जग जाय।

भैया ! हितका मार्ग बडा कठिन है। हितका मार्ग बड़ा कठिन है। हितका मार्ग कठिन न होता तो सुकौशल जैसे राज पुत्र जिनको सिंहनी खा रही थी, क्या उनमे यह बल न था कि दो मुक्के देकर उसे पिछाड़ देते, पर उन्हें इतना भी पसद न आया कि ५ मिनट लडकर मुकाबला करके उसे अलग करदें और फिर दिनभर खूब ध्यान करे। अरे इन ताजे ५ मिनटोंकी हम विकल्प व्यवस्था करें तो आगेके पूरे दिनोंकी क्या आशा ? यह स्थिति थी उन मुनिराजकी जैसे यहा गृहस्थ लोग सोचने लगते है कि एक साल भर में ऐसा काम बनाले फिर तो दूधके धुले बनकर, मंन्दिरमे रहकर, सब

आरम्भ छोड़कर भजन ही भजन करेंगे। अरे यहा तो संसारमें एक दिनका भरोसा नहीं, फिर सालभरकी जिन्दगीका भरोसा ही क्या ? ऐसे ही आपने वीसोंको देखा होगा कि जिनसे आपकी वात हुई होगी कि वस हमारे लिए तो ६ माहकी कसर है। यह हो जाय फिर इसके बाद कुछ वाञ्छा नहीं है। और फिर दो साल बाद फिर वह मिले और पूछें कि कहो जी अव तो ६ महिने हो गए। कहेंगे कि क्या बतलायें, ऐसा टटा आ गया। कि अव तो निकलनेकी आशा ही नहीं है।

भैया ! टटे न जाने कहा छुपे रहते हैं और वे टटे आ जाते हैं। क्यों आ जाते है कि टटे बाहरसे नही आया करते। ये टटे तो भीतरसे निकाले जाते हैं। तो जव उपादान उस योग्य है तो टटोंसे भी टटे निकलते रहते हैं। अजी क्या करें, उस समय मेरा विचार था और विल्कुल पक्का हो गया था, पर बादमें इतनी वात और भिड़ गई। उसके मारे ऐसा फँस गए कि अव १० साल तक भी आशा नहीं है। यह परिस्थिति है तो करिष्यामि, करिष्यामि, करिष्यामि चिन्तितम्, फिर मरिष्यामि, मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतम्। मै यह करूंगा, मैं यह करूंगा, इसका ही तो चिंतन किया, पर मैं मरूँगा, मैं मरूंगा इसको भूल गए। अगर धन थोडा वहुत जोड लिया तो अपने को यह समझ लिया कि इस जगत्में हम ही एक प्रभु हैं। अरे तुम्हारी आत्मासे बाहर एक अणु मात्र भी तुम्हारा कुछ नहीं है। और धनका सचय, विकल्प की खान ही वना रहे हैं। सोचो तो सही, तुमने तो माना ऐसे प्रभुको जिनके न स्त्री है, न पुत्र है, न वस्त्र हैं, न शरीर है, केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा है। उसे तो माना तुमने भगवान् और तुम्हारी वृत्ति ऐसी हुई कि तुम विश्वके सचयमें ही अपना मन लगाना चाहते हो तो वतलावो तो प्रियतम कि भलाई कव करोगे ? सुलझेगा कव होगा ?

जाडे के दिनोंमें तालावमें जव नहाने जाते हैं वच्चे लोग तो, एक तो पहिले जलमें पैर ही नहीं रखा जाता है और अगर पजा रख दिया तो धीरे चलते हैं, वगला जैसी टागे उठाकर कि कहीं मछली को आहट न हो जाये। घुटनों तक आये तो रोंगटे खडे हो गए, आधी कमर तक आए तो लौट जाना चाहते हैं। अरे क्या लौटना चाहते हो, एक डुबकी लगा लो तो सारा जाड़ा खत्म हो जायेगा। जव तक डुवकी न लगाये तव तक पानीका डर है, और डुवकी एक लगाली फिर ठड नहीं लगती है। तुम्हारे घरके गर्म पानीसे नहानेके बाद ठड लगेगी और प्राकृतिक तालावके पानीमें डुवकी लगालो तो ठड न लगेगी। तो भारी डर रहता है कि क्या होगा, फिर कैसे रहेंगे, कैसे गुजारा होगा और एक जाप दे रहे हैं, सामायिक कर रहे हैं,

कदाचित् बाहिरी विकल्प अभिभूत हो जाये व आत्मामें कुछ प्रवेश करने लगे तो फिर ख्याल आगया कि अगर हम आत्मामें ही डूब गए तो इन घरके तीन प्राणियोंका क्या होगा ? अरे एक बार डूब तो लो। उनकी चिंता तो छोड़ो। आत्मामे डूबनेका अवसर मिलता है तो डूब लो, आनन्द ही आनन्द होगा, फिर दुःखका लेश कारण नही। ऐसे परमानन्दनिधान ज्ञायक स्वरूप भगवान् निज आत्माके परमानन्द रससे तृप्त होकर भली प्रकार अनुभव करो। अब समझमें इतना आया ना। क्या आया कि ज्ञानमय आत्माको जानना चाहिए। इसमें ही परम आनन्द भरा हुआ है। समझ में आया तब यह जिज्ञासु भाई पूछता है कि ज्ञान वह क्या है जिस ज्ञानके जाननेसे सारे संकट टल जाते हैं।

णाणु पयासहि परमुमुहि किं अण्णे बहुएण।
जेण णियप्पा जाणियइ सामिय एक्कखणेण ॥१०४॥

हे भगवान्! जिस ज्ञानसे क्षण भरमें अपना आत्मा जाना जाता है वह परम ज्ञान मेरेमें प्रकाशित करो और बहुत बातें पूछने से क्या फायदा, अनेक विकल्पजालोंसे क्या लाभ ? अभी उत्तर नहीं दिया जा रहा है सिर्फ प्रश्न किया है। महाराज बातें बहुत हो गईं, अब तो मूल मुद्दाकी बातें बतलावो कि वह ज्ञान क्या है, जिस ज्ञानके जान लेने पर यह निज आत्मा जान लिया जाता है। वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानके द्वारा दूसरोंसे ज्ञानका ज्ञान आजाय इसके लिए क्यों तरसते हो ? तुम ही स्वयं अपने ज्ञानसे राग-द्वेष रहित होकर समझो तो जान जावोगे। उस वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानके द्वारा क्षणमात्रमें ही यह निज आत्मा शुद्धबुद्ध एकस्वभावी ज्ञात होता है। हे भगवन्! मुझे तो तुम उस आत्माकी बात कहो और रागादिक विकल्पजालोंसे क्या फायदा ? यह प्रश्नकर्ता विकल्प विवाद नहीं चाहता। देखो लड़ाइयां कब होती हैं। जब कोई अपने को जानता है कि मैं मजेमें हूं, बड़े आराममें हूं, उसको ही लड़ाई सुहाती है। और जो खुद दुखी होगा उसको लड़ाई कहां सुहाती है ? तो अपन भी सोचें, अपन क्या विवाद करें, किससे झगड़ें, खुद तो कालके डाढ़से फंसे हुए हैं, कर्मों के बंधनसे जकड़े हुए हैं। तेरी ही खुदकी खैर नहीं है तो तू दूसरी आत्मासे झगड़ा क्या करता है ? रागादिक बढ़ाने वाले विकल्पजालोंसे कोई लाभ नहीं है।

इस दोहेमें यह बात बतलाई गई है कि जिस ज्ञानके द्वारा जो कि मिथ्यात्व रागादिक विकल्पोंसे रहित है, उस निज शुद्ध आत्माकी सम्वित्तिरूप ज्ञानके द्वारा अन्तर्मुहूर्तमें ही परमात्मस्वरूप जान लिया जाता है। वह परमात्मस्वरूप ही उपादेय है, परमात्मा स्वयं जान लिया जाता है। इस गाथा

का यह अर्थ है। यहां प्रभाकर भट्ट पूछ रहे हैं कि हे भगवन ! हे वीतराग ! स्वसम्वेदन ज्ञानके द्वारा शुद्ध ज्ञान वाला जो आत्मा है उसको ही कहो। रागादिक बढ़ाने वाले विकल्पजालोंसे क्या लाभ है ? इस दोहेमें यह बताया है कि जिस मिथ्यात्व रागादिक विकल्परहित ज्ञानके द्वारा जैसा शुद्ध आत्माका स्वसम्वेदन रूप है, अन्तर्मुहूर्तमें ही परमात्मस्वरूप जान लिया जाता है, ऐसा ज्ञान ही उपादेय है। अब इस प्रश्नके उत्तरमें ज्ञानस्वरूप पर प्रकाश डाला जाता है।

अप्पा णाणु मुणेहि तुहु जो जाणइ अप्पाणु।
जीव पएसहि तित्तिउ णाणें गयणपमाणु ॥१०५॥

जो आत्माको जानता है, जीवप्रदेशसे लोकप्रमाणमात्र आत्माको जो जानता है अथवा निश्चयसे लोकमात्र प्रदेश वाला होकर भी जो व्यवहारनय से सकोच विस्तार वाला हो, ऐसे आत्मा को जो ज्ञानके द्वारा जानता है, व्यवहारसे असख्यात प्रदेशी होकर निश्चयसे अखड अभेद चिन्मात्र जानता है। उसको ही तुम ज्ञान समझो। जगत्‌में मोही जीव अपने सुखके लिए क्या क्या चीजें बाहरमें ढूँढते हैं, पर जब सुख होना फिट बैठेगा तो आत्माके ज्ञानके स्वरूपके जाननेसे ही फिट बैठेगा अन्यथा फुटबालकी तरह यहांसे वहां डोलना रहेगा। वे जीव धन्य हैं, वे महाभागी हैं, वे प्रशमाके पात्र हैं जिन का चित्त ससार, शरीर और भोगोंमें नहीं रमता है। एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप की दृष्टिकी ही उत्सुकता रहती है। वह निकट भव्य है और शीघ्र ही मुक्तिगामी जीव हैं। अपनेको लक्ष्य बनाना चाहिए मोक्ष जानेका। जितना इस भवमें मुक्तिके लिए हो सके कर लो, लक्ष्य होना चाहिए मुक्तिका ही।

लडकों को हम व्यवस्थित बना दें, धन हम खूब जोड़कर रख दें—ऐसा विकल्प आत्महितकारी नहीं है। ससारमें अनन्त जीव हैं। सब मेरे समान हैं और सब मेरे से भिन्न हैं। उनमें से २-४ को अपना मान लिया, यह कितनी अनुदारता की बात है। व्यवस्थाके नाते उन्हें सभाल लेना यह तो उचित है, पर उनमें मोह बनाए रहना यह तो उचित नहीं है। देखो अपने ज्ञानस्वरूपको। मोहको हटावो मिलता भी क्या है मोहसे जो है सो है। किन्तु मोही जीवोंके ऐसा जबरदस्त कलक लगा है कि जिससे ससारका परिभ्रमण बढ़ता ही चला जाता है। यह आत्मा निश्चयनयसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान—इन पाच ज्ञानोंसे अभिन्न है और व्यवहारसे ज्ञानकी अपेक्षा लोक और अलोकमें व्यापक है और निश्चयसे लोकमात्र असख्यात प्रदेश वाला है। और व्यवहारसे अपना देह प्रमाण है। ऐसे आत्माको हे मुमुक्षुजन ! तुम जानो।

यहां गुणपर्याय और व्यञ्जनपर्याय, दो प्रकारकी दृष्टि दी गई है। गुणपर्यायमें यह आत्मा अपने व्यक्त ज्ञानसे अभिन्न है। निश्चयनयसे, व्यवहारनयसे जितने पदार्थोंमे यह ज्ञान पहुचता है उतना क्षेत्रमें व्यापक है। आपका ज्ञान कितना वडा है ? जितनी कि आपकी जानकारी होगी उतना वडा यह ज्ञान है। व्यवहारसे और निश्चयसे तो आत्माके प्रदेशमें जो परिणमन हो रहा है वह तावन्मात्र है। जैसे पूछा जाये कि आपकी दृष्टि कितनी वडी है तो निश्चयसे तो दृष्टि एक तिल वरावर ही है। जितना कि आखका तिल बराबर काला होना है उतनी ही दृष्टि है, पर इस दृष्टिके माध्यमसे हम जितने पदार्थोंको निरखते हैं तो व्यवहारसे हम कहते हैं कि हमारी दृष्टि इतने मील तकमें फैली हुई है। निश्चयसे देखा जाये तो ज्ञानका आश्रयभूत जो आत्मप्रदेश है उतनेमें ही वह ज्ञान फैला है और व्यवहारसे लोक अलोकमे जहा तक व्यापक है वहा तक ज्ञान फैला है। यह हुई ज्ञान-पर्यायकी वात।

अव व्यजनपर्यायको देखो। आत्मा कितना वड़ा है ? निश्चय से तो आत्मा असंख्यातप्रदेशी है। निश्चय क्या होता है कि जहा किसी दूसरे द्रव्यको विपय न किया जाये। जव हम देहको तो देखें नहीं, केवल आत्म-प्रदेशको ही निरखें तव क्या उत्तर आयेगा ? हम कितने वड़े हैं ? वस असख्यात प्रदेशी हैं, किन्तु जव शरीरपर भी दृष्टि दें और उत्तर देना चाहें तो क्या कहेंगे ? जव जीव जिस देहमें है तव जीव उस देहप्रमाण है। सो ऐसे आत्माको तुम जानों। किस प्रकार जानों कि विकल्पकल्लोलोंके समूह को त्यागकर जानो। आत्माका सही जानन निर्विकल्प होकर ही हो सकता है। जैसे कोई मिठाई सामने रख दे, मान लो पेड़ा रख दे और आपसे कहें कि जरा इन पेडोंको भी तो समझो, जानो, देखो, तो क्या पेड़ोंको हाथमें लेकर देखा जायेगा, मुँहमे धर कर देखा जायेगा ? नहीं। उसके जाननेकी तरकीव ही इसी ढंगकी है। पेडेका रूप देखनेको नहीं कहा गया, रस जानने को कहा गया। तो रखो मुखमें और पेड़ों को समझलो।

एक ऐसा ही चुटकुला है कि मा ने वनाये रसगुल्ले। अपने लड़केको पावभर रस गुल्ले देकर कहा, वेटा इन्हें ऐसी जगह रख आवो जहा चींटियां न चढ सकें। मतलव तो यह था कि कहीं पिटारे या सींकचे पर रख आवो सो वह धर आया ऐसी जगह पर, मतलव पेटमें। दूसरे दिन मा ने कहा वेटा रसगुल्ले ले आवो, अपनी वहिनको भी दे दो। तो लडका वोला, मां मैं तो उन रसगुल्लोंको ऐसी जगह धर आया कि जहा चींटी चढ ही नहीं सकतीं हैं, मतलव पेटमें। और पेडेका जानना कैसे वनेगा ? खा करके वनेगा। इसी

प्रकार आत्माका जानना कैसे बनेगा निर्विकल्प होकर बनेगा। सो जो पद्धति है उसका तो यत्न नहीं करना चाहते और परेशानी उत्पन्न होती है कि महाराज सामायिकमें बैठते हैं तो मन नहीं लगता। पूजामें भी चित्त नहीं लगता। ठीक है, नहीं मन लगता इसका कारण है विकल्प।

बच्चे लोग बरसातके दिनोंमें रेतका भट्टा बनाते हैं, घर बनाते हैं। उसे बनाकर खेलकर, लात मार कर मिटा भी देते हैं। इसी तरह सम्यग्दृष्टी जीवके इतना साहस होता है कि कितनी ही चीजें बनाएँ, कितनी ही चीजों को पासमें रखे, पर सबको अपने उपयोगसे हटानेमें कुछ देर नहीं लगती। यह ज्ञानका बल है। तो समस्त विकल्पकल्लोलों को छोड़कर ही आत्माको जान सकते हैं। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा आदि समस्तविकल्प कल्लोल हैं। उनको छोड़कर कोई पुरुष यदि जानता है आत्माको तो वही पुरुष तो ज्ञानसे अभिन्न है। वही ज्ञान कहलाता है। आत्मा ही ज्ञान है और ज्ञान ही आत्मा है। आत्माके स्वरूपको यदि जानते हैं तो जाननेके स्वरूपको जानते हैं। आत्मा झट जाननेमें आ जायेगा। आखोंसे आकर देखनेसे आत्मज्ञान नहीं होता। जानन क्यों प्रतिभास ? एक प्रकाश ज्ञानमात्र और कोई तरंग नहीं। ऐसे निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप को जानने पर यह आत्मा ज्ञात होता है। सो यह निश्चयसे ५ ज्ञानोंसे अभिन्न आत्माको जो जानता है, वही ध्याता है, ज्ञाता है, ज्ञानस्वरूप है, उसही ज्ञानस्वरूप को तुम उपादेय जानो।

और भी देखो भैया ! आप बतलावें कि खालिस अंगुली आपने देखी है क्या ? सीधी अंगुलीको हम नहीं कह रहे हैं, टेढ़ी अंगुली नहीं, गोल अंगुली नहीं, किन्तु खाली अंगुली जो न सीधी हो, न टेढ़ी हो, न गोल हो, जो अंगुली मिट जाय उसको हम नहीं पूछ रहे हैं। जो सदा रहने वाली हो बहुत काल तक, ऐसी अंगुली देखी है किसीने ? आप अंगुली खड़ी करके बतला देंगे कि यही तो है। हम इसको नहीं पूछ रहे हैं। यह तो सीधी अंगुली है। यह तो मिट जायेगी। ऐसी अंगुली कहां मिलेगी जो सीधी, टेढ़ी दशावोंमें हो और फिर वही का वही सत् हो, वही तो शुद्ध अंगुली है। और मनुष्य किसी ने देखा है ? हम बच्चे की बात नहीं करते, जवान, बूढ़ोंको नहीं पूछते। खालिस मनुष्य देखा है किसी ने। किसी भी बालक या जवान को ले आवो, सब तरहके मनुष्य सामने धर दो और समझावो कि जो बालक, बूढ़े और जवान, सबमें एक बस रहा हो वही तो मनुष्य है।

इसी प्रकार आत्मा का लक्षण है ज्ञान। ज्ञान रहता है ५ अवस्थावों मे—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, और केवलज्ञान। इन

पांचोंमें से कोई भी एक परमार्थ जीव नहीं है, किन्तु जो वह एक इन पांचों ज्ञानोंमें पहुचता है वही आत्मा है। किसीने शुद्धरूप देखा है? नहीं। कुछ हरी चीज धर दोगे। हम हरी की बात नहीं कर रहे हैं, हम पीले, नीले सफेदकी बात नहीं कर रहे हैं। खाली रूपकी बात बना दो कसे बतावोगे? इन पांचोको बतलावो फिर समझोगे कि इन पांचों रूपोंमें रहने वाला जो एक तत्त्व है उसको ही रूप गुण कहते हैं। यो ही आत्माके ५ ज्ञानोंमे एक रूपसे रहने वाला जो ज्ञानस्वभाव है उसको तुम परमात्मा जानो।

उस परमपारिणामिक भावमय आत्माके आश्रयसे ही मोक्ष होता है। लगता होगा कि ऐसा कहा ज्ञान पहुचया रहे हैं जहा कुछ मिलता भी नहीं है, न पिंडरूप है, न पकड़ सकते हैं। ऐसा कहा उपयोग पहुचवा है कि इसको हम परमात्मा मानें। अरे ठीक है, मगर ऐसी अटपट जगहमे पहुचाया कि जहा कुछ हाथ नहीं लगता तो भली बात है। किसी भी प्रकार मोहका छूटना होना चाहिए। और भी उस ज्ञानके सम्बन्धमें कहते हैं।

अप्पह जे वि विभिन्न वढ ते वि हवंति ण णाणु।
ते तुहु तिण्णिवि परिहरिवि णियमिं अप्पु वियाणु ॥१०६॥

हे वत्स! आत्मासे जो भिन्न भाव हैं वे भी ज्ञान नहीं हैं। सब ज्ञानसे रहित जड़रूप हैं। सो धर्म, अर्थ, काम तीनों भावोंको छोड कर, निश्चयसे तू आत्माको जान। धर्म, अर्थ, काम तीन तो ये पुरुषार्थ हैं और चौथा है मोक्ष। सो मोक्ष तो अभी है नहीं। तव एक पुरुषार्थ ऐसा बताये जो आपको कुछ कुछ अच्छा लगे। मान जायेंगे आप कि हमे बड़ी अच्छी बात बताई। तो चौथा पुरुषार्थ हो गया निद्रा-लेना। धर्म करना, धन कमाना, व्यवस्था करना, भोग भोगना और नींद लेना। तो यहा करनेकी बातें तीन बताई जा रही है। नींदकी बात तो लोक पसंदकी वजहसे कही है (हंसी)। कहना पडता है, पर धर्म अर्थ काम ये तीनो भी आत्माके स्वरूप नहीं हैं। जो पुण्य रूप भाव है वह आत्माका स्वरूप नहीं है। वह तो राग परिणामकी बात है। आत्मा तो शुद्ध स्वच्छ ज्ञायकस्वरूप है। धन भी आत्माका स्वरूप नहीं है और काम का तो स्वरूप ही क्या है? इनको छोडकर तू आत्माको केवल ज्ञानमात्र अनुभव कर।

यह आत्मा समस्त परपदार्थोंसे भिन्न है। यह तो एक विशद ज्ञायकस्वरूप है। यह भगवतसे भिन्न है। अपने अपने आपका अनुभव करो। धर्म, अर्थ, काम- इन तीनो पुरुषार्थोंको छोड़कर एक ज्ञानमात्र अपने स्वरूप में लगो, इन तीनोंमे जो काम पुरुषार्थ है वह तो बुरा होगा ना? अपनी इन्द्रियोंका भोग भोगना, विषयवासना रखना, यह तो बहुत बुरा होगा ना?

तो कामपुरुषार्थ बुरा है और धन कमाना यह भी बुरा है, क्योंकि भोग भोगनेके लिए ही धनकी प्राप्ति की जा रही है। अच्छा तो दोनों बुरे हैं, धनका विकल्प करना और विषय विकल्प करना। दोनों बुरे हैं, इनको छोड़ना है। अर्थ और काम पुरुषार्थ हेय हैं। तो इनकी जो बढ़वारी करे, उत्पन्न करे, ऐसा परिणाम तो इससे भी अधिक हेय है। तुम समस्त परपदार्थों से, निश्चयसे भिन्न इन तीन पुरुषार्थोंको छोड़कर वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानरूप ज्ञानसे स्थिर होकर अपने आत्माको जानो। यहां योगीन्दुदेव प्रभाकर भट्टको समझा रहे हैं।

अप्पा णाणहँ गम्मु पर णाणु वियाणइ जेण।
तिण्णिवि मिल्लिवि जाणि तुहुं अप्पा णाणें तेण ॥१०५॥

यह आत्मा नियमसे ज्ञानका गोचर है क्योंकि ज्ञान ही आत्माको स्वभावसे जानता है। इस कारण हे प्रभाकरभट्ट! तुम धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंके भावोंको छोड़कर ज्ञानसे निज आत्माको जानो। बड़ा कठिन काम है अपने आपके पतेकी बात समझना और बड़ा सरल काम हो रहा है पराधीन, कष्टकी खान, सुखाभासका भोगना, पर इन्द्रियविषयोंको भोग कर विषयभावोंको भोगकर पूरा क्या पड़ेगा सो बतलावो। जैसे स्वादका लोभी पुरुष कर्जा ले लेकर भी बहुत बढ़िया स्वाद लेना चाहता है पर इसके फलमें होता क्या है कि स्वाद तो वापिस आता नहीं। 'घाटी नीचे माटी।' खानेके आध मिनट ही बाद खाना नीचे आ गया। चाहो कि खाना गलेके नीचे न उतरे, गलेमें ही ठहरा रहे तो ऐसा नहीं होता है। वह तो निगलते ही नीचे सरक जाता है। यदर तो भले ही टाइसे किसी तरहसे निकाल लेते हैं। तो स्वाद वापिस आता नहीं है। और कर्जा जो ले चुके हैं तो उसका भूत और उपद्रव चैन नहीं लेने देता। इस सुखाभासमें रखा क्या है? विवेक तो उसे कहते हैं कि जो आय हो उसके भाग बनालें। उतने हिस्सेमें ही तुम अपना गुजारा करो। चाहे रूखा गुजारा हो उसे मंजूर करलो पर अपने धर्मकी रुचि प्रबल बनाए रहो इसीका नाम विवेक है और धर्मका फल क्या? विषयोंमें रम गए तो उसका नाम विवेक नहीं है।

एक आदमी खजूर पर चढ़ गया। चढ तो गया पर उतरनेके टाइम पर नीचेको देखे तो डर लगे। सो कहता है कि भगवान् हम अच्छी तरहसे नीचे उतर जायें तो १०० ब्राह्मणोंको जिमायेंगे। कुछ नीचे उतरा तो बोला ५० को जिमायेंगे और कुछ उतरा तो रह गए ५, बिल्कुल नीचे उतर आया तो बोला, वाह जिमावें काहे को, उतरे तो हम हैं। ऐसी स्थिति हम आपकी चलती है कि जब कोई संकट आ जाये, बड़ा तेज ज्वर आ जाये, किसी

मृत्युके सदेह वाला कोई सकट आ जाये तो यह सोचते कि यदि मैं बच जाऊँ तो अब कुछ कमाना धमाना नहीं है, सत्सगति, धर्मलाभमे लगकर अपना जीवन बिताना है और जब बच गए तब तो ये सब बाते भूल जाया करते हैं। किस पर ऐसी नहीं बीती है। कई बार मरनेमे सन्देह हो गया होगा और उस समय विचार किया होगा, पर जैसे ही सकट मिटता हैं तैसे ही यह जीव अपने विषयोंके आनन्दमें मस्त हो जाता है।

धर्म, अर्थ, काम-इन तीनों पुरुषार्थोंको छोड़कर वीतराग, स्वसम्वेदनरूप, शुद्ध आत्माकी अनुभूतिरूप ज्ञानमे ठहर करके अपने शुद्ध आत्माको जानों। आत्मज्ञान बिना कर्म नहीं कट सकते। उन बदरोंकी तरह जरॅहटा भी जोड़ लो, जुगनू भी जोड़ लो, हाथ पसार कर भी बैठ लो, पर क्या ठड मिट जायगी ? नहीं। बदरकी चचलता तो देखो कि ठड और बरसातमें कैसा भागते फिरते हैं। चिड़िया तो अपना घोसला बनाकर ठड, बरसात काट देती है, पर मनुष्यके जैसे हाथ पैर रखने वाले बदरोंको तो देखो वे जाडे, बरसातमे यों ही इधर उधर भागते फिरते हैं। चिड़िया तो ऐसा बढिया घोंसला बनाती हैं कि आदमी भी नहीं बना पाता है। एक बैया चिड़िया देखी होगी, वह इतना बढिया घोसला बनाती है कि मनुष्य भी वैसा नहीं बना पाता। पर यह बदर नहीं बना पाता। सो बदरोकी तरह मूलज्ञानकी कितनी ही क्रियाये करे, उससे आत्माका कोई लाभ नहीं है।

निज शुद्ध आत्मा ज्ञान द्वारा ही गम्य है। शुद्ध आत्माका अर्थ है कि मेरे आत्माका अपने आपके सत्यके कारण जो स्वरूप होता है वह है शुद्ध आत्मा, खालिस आत्मा। बिना परपदार्थोंके सयोगके आत्मा स्वय जैसा हो सकता है वह कहलाता है शुद्ध आत्मा। वह ज्ञानसे ही जाना जा सकता है। जब तक इस शुद्धआत्माका ज्ञान न हो तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता और जिसके सम्यग्दर्शन नहीं है उसको अरबोंकी भी सम्पदा मिल जाय फिर भी गरीब है। सम्पदासे क्या होता है ? वह आनन्दका जनक नहीं है। निज शुद्ध आत्मस्वरूपपर दृष्टि जाये तो वहा का आनन्द विचित्र आनन्द है। हम अरहत सिद्ध भगवतको क्यो पूजते हैं ? क्योंकि वह आनन्दमय है। सब जीवोंका ध्येय एक आनन्द होता है। ज्ञानकी भी लोग उपेक्षा कर सकते हैं। हमें ज्यादा ज्ञान न हो, न सही, क्या लेना देना, पर आनन्द तो ज्ञान और आनन्द, इन दो में से छटनी जीव किसकी करेगा ? आनन्दकी। किसी से कहो कि तुम्हें बहुत ज्ञान चाहिए या आनन्द ? तो वह क्या मांगेगा ? वह आनन्द मागेगा। हालांकि आनन्द ज्ञान बिना नहीं हो सकता है, इस कारण ज्ञान तो आ ही जायेगा, पर पानेकी इच्छा आनन्दकी होती हैं। तो

तुम्हारा आदर्श आराधनीय वही आत्मा हो सकता है, जो शुद्ध अविनाशी परम आनन्दमय हो।

कभी किसी को बचाने गए, कभी किसी की युद्धमें सहायता करदी, कभी किसीकी स्त्रीको भगाने लगे, कोई अपनी पूजाका उपदेश देने लगें, मौज मानने लगे—ऐसा जो करता हो वह प्रभु नहीं है। हा, साधारणजनोंसे कुछ बड़ा है। सासारिक दृष्टिसे जैसे आपके गावमें आपसे बडे दस बीस होंगे, पर वे प्रभुताकी श्रेणीमे नहीं आ सकते हैं। प्रभु तो वही हो सकता है जो शुद्ध परम आनन्दमय हो। यह शुद्ध आत्मा ज्ञानसे ही गोचर है। वह शुद्ध आत्मा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान—इन पाचोंके भेदसे रहित है। जैसे कल कहा था ना कि ऐसी अगुली जो न टेढ़ी हो, न सीधी हो, बल्कि उसका नाम हो तो क्या उस केवल नामको ही देख सकते हो? आखोंसे अगुली दिखेगी क्या? नहीं। वह तो टेढ़ी अगुली या सीधी अगुली मिलेगी या और और प्रकार मिलेगी, पर सीधी टेढी आदि पर्यायसे रहित अगुली ही तत्त्व है, वह ज्ञानसे समझमें आती है। वह अगुली आखोंसे नहीं दिखती है। है ना कोई एक अगुली जो कभी सीधी हो जाती, कभी टेढी हो जाती। अगुली कुछ है ना। एक तो वह ज्ञानसे तो समझमें आ रहा है पर आखोंसे नहीं दिख सकता।

भैया! जब भौतिक पदार्थोंमें भी शुद्ध पदार्थको अर्थात् पर्यायके विकल्प से रहित पदार्थको इन्द्रियों द्वारा नहीं जान सकते तो शुद्ध आत्माको इन्द्रियों द्वारा जान ही क्या सकेंगे? यह शुद्ध आत्मा साक्षात् मोक्षका कारण है। तो जब तक इसे न जान जायें, न अनुभव जायें तब तक सम्यक्त्व नहीं होता। यह जो परम पद है, परमात्मा शब्द द्वारा वाच्य है। इस रूपका जो आत्मा है, वही परमात्मा है। उस आत्माको वीतराग निर्विकल्प स्वसम्वेदन ज्ञानगुण के बिना, चाहे कठिनसे कठिन तपस्या और अनुष्ठान किये जायें तो भी, इस परमात्मपदको नहीं प्राप्त किया जा सकता। समयसार में भी यही कहा गया है कि ज्ञान गुणसे रहित होकर इस परमात्मपदको प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि दुःखोंसे छूटना चाहो तो एक इस पदको ग्रहण करो। दुःख सुखका बन्धन खुदमें विराजमान है, पर दृष्टिमें न होनेसे ससारमें भटकना बन रहा है। बस इस ही सुखनिधान आत्मतत्त्वको जिसने जान लिया वह अमीर है, सम्यग्दृष्टी है, उसकी निकट समयमें मुक्ति होगी।

भैया! इस प्रभु आत्माको कौन जाचता है? जो सर्व प्रकारसे परद्रव्योंसे अछूता है। इन परद्रव्योंको जितनी देर छोड़ोगे उतनी देर जानन बनेगा। सारे दिन न छोड़ सके तो ५ मिनट को तो सब इच्छावोंको विदा

कर दो। ऐसा भी तो कुछ आत्मीय आनन्द लूटो कि जिन ५ मिनटोंमें किसी भी परद्रव्यकी वाञ्छा न हो, न पुण्यकी वाञ्छा हो, न धन कमानेकी वाञ्छा हो। न पालन पोषण काम भोग, स्त्रव [illegible]वृत्तिकी इच्छा हो, सर्व परद्रव्योंकी इच्छाको जो छोड़ता है वह निज शुद्ध आत्मा सुख, रूप, अमृतसे तृप्त होता है, वही निष्परिग्रही ही है, वही तो शुद्ध आत्माको जानता है।

लोकमें भी सीधी सी तो बात है। दो पुरुष यदि विरोधी हैं और आप किसी एकसे मित्रता करें तो दूसरेसे लड़ाई ही हो जायगी। और दोनों से ही मित्रता करें तो जिससे अधिक मित्रता होगी वह आपको अपना लेगा और जिससे मित्रता न होगी वह बाहर कर देगा। इसी तरह चीजें दो हैं प्रभुस्वरूप और संसारस्वरूप। दोनों परस्पर विरोधी हैं। प्रभुस्वरूप अत्यन्त निर्मल है और संसारस्वरूप स्वयं मल है तो दोनोंमें से आप यदि संसारस्वरूपसे मित्रता करेंगे तो प्रभुस्वरूप से अलग हो जायेंगे। प्रभुस्वरूप तब प्रसन्न होगा जब आप केवल प्रभुस्वरूपमें ही दृष्टि रखें।

भैया! बात बहुत सुगम भी है और बड़ी भी है, तिलकी ओट पहाड़ है। तिल कितना बड़ा होना है? बिलकुल छोटा। यदि उसे आंखके ऊपर रख दो तो लो पहाड़ ढक गया। तो एक अपने आपकी ओर दृष्टि न पहुंचने दे तो यह आत्मा सर्व प्रकार ही तिरोहित हो गया। प्रभुके दर्शन करनेकी विधि इच्छाका अभाव है। सो जो धर्म, अर्थ, काम आदि समस्त परद्रव्योंकी इच्छाको छोड़ता है वह आत्मीय आनन्दरसमें तृप्त होता हुआ निष्परिग्रही कहलाता है और वह ही आत्माको जानता है। निष्परिग्रह किसे कहते हैं? जो इच्छाएं न रखे उसे निष्परिग्रही कहते हैं। इच्छावोंका ही नाम परिग्रह है, चीजका नाम परिग्रह नहीं है।

भैया! कोई चीज आत्मासे चिपटी नहीं फिरती है और इच्छाएं ये आत्मासे चिपटी रहती है। तो हमें परिग्रहकी आपत्ति देने वाली इच्छा है, बाह्यपदार्थ नहीं हैं। सो यह आत्मा जब इच्छावोंसे दूर हो जाता है तो परिग्रहरहित हो गया। ज्ञानी पुरुष न तो पुण्य चाहता है, न पापको चाहता है, न भोजन चाहता है, न पान चाहता है और होती रहती हैं सब चीजें। क्या किसी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषसे पाप नहीं बन्धता है? पाप भी होते हैं, परमें रहता है। क्या वह ज्ञानी पुरुष पुण्य नहीं करता? अरे वह तो पुण्य को व [illegible]लतासे करता है। क्या सम्यग्दृष्टि भोजन नहीं करता, पानी नहीं पीता? अरे सब कुछ करता है। फिर भी अन्तरमें इच्छा है ज्ञानस्वरूपके अनुभव की। मेरे सदा काल शुद्ध आत्मस्वरूपकी भावना हो ऐसे अनुभव के कारण वह पुण्य पाप, भोजन, पान करने वाला नहीं कहलाता है। इसके

अनेक दृष्टान्त हैं। मुनीमको दुकानका कर्ता नहीं बताया, पर करता सब वही है। सेठ तो अपने घरमें बैठा रहता है। कभी-कभी आ जाता है। तो सब कुछ करते हुए भी मुनीम को कर्ता नहीं कहते हैं। क्योंकि वह प्रत्येक पदार्थमें अपना स्वामित्व नहीं समझता है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष घरमें रहता हुआ भी वह कर्ता नहीं कहलाता है। क्योंकि उसके किसी भी प्रकारकी धर्म, अर्थ, काम की वाञ्छा नहीं है। अर्थात् सम्यग्दृष्टी ने धनका उद्देश्य नहीं बनाया और नाना साधनों का उद्देश्य भी नहीं बनाया। इस कारण ज्ञानी, सम्यग्दृष्टी पुरुप सब कुछ करता हुआ भी अकर्ता कहलाता है।

प्रकरण यह चल रहा है कि ज्ञानीका और अज्ञानी का स्वरूप कैसा है? यह ज्ञानमय है। ऐसे ज्ञान पर दृष्टि डालिए जो मतिज्ञान आदिक विकल्पोंसे परे है, केवल निज शुद्ध ज्ञानशक्तिमात्र है, वहां दृष्टि जाने पर फिर रागद्वेपके होसहवास उड़ जाते हैं। अभी २-३ दृष्टान्त ही मोटे-मोटे ले लो और उसकी जानकारीमें लग जावो तो होसहवास यहा भी उड़ने लगेंगे। जो दृष्टान्त कई बार दिए गए। अच्छा शुद्ध मनुष्य बतलावो कौन है? जो न बालक हो, न जवान हो, न बूढ़ा हो उसे कहते हैं शुद्ध मनुष्य। केवल मनुष्य, इस पर जरा निगाह तो दो। यदि कोई बच्चा दीखे तो उपयोग हटालो। यह नहीं है शुद्ध मनुष्य। जवान दिख जाये तो उपयोग हटालो, यह नहीं है शुद्ध मनुष्य। अथवा कोई बूढ़ा मिले तो उपयोग हटा लो, यह नहा है शुद्ध मनुष्य। जो बालक, जवान, बूढ़ा सबसे रहित हो, वह है शुद्ध-मनुष्य—ऐसा समझते हुएमें कुछ होश भी नहीं रहा है। कहा चित्त पहुचाया? वह तो नथिङ्ग जैसा मालूम होता है। क्या है वह? यदि नहीं है मनुष्य तो बालक कौन बनेगा, जवान कौन बनेगा, बूढ़ा कौन बनेगा? तो है ना मनुष्यत्व बालक, जवान आदिसे अलग, मगर देखा कैसे जाये? वह ज्ञान-गम्य है। ऐसे और और भी दृष्टान्त ले लो।

कहीं भी शुद्ध वस्तुमें दृष्टि लगावोगे तो वहां रागद्वेपमें अन्तर जरूर पड़ेगा। फिर जो निजशुद्ध आत्मामें दृष्टि लगायेगा उसके तो रागद्वेष खत्म हो जाते हैं। जगलमें जो साधुजन रहते थे वहा और क्या बल था, जो जगल में भी खुश रहते थे। उन्हें जगलसे हटना पसद नहीं था। उनके पास कोई नौकर भी नहीं, कोई रसोई बनाकर खिलाने वाला भी नहीं, भूख लगी तो जगलसे गावमें आकर विधिपूर्वक मिला तो खाकर चल दिये। ऐसे असहाय, धन दौलतसे रहित, कपड़ा तकसे रहित ऐसे साधुजन जो जगल में भी प्रसन्न रहा करते हैं, वे किस बलपर प्रसन्न रहा करते थे? वह बल तो बतलावो? वह बल है शुद्ध आत्मतत्त्वका दर्शन। वे तो जगलमें खूब

मन भरकर प्रभुसे मिले जुले रहा करते हैं। उतना प्रसन्न और कौन रह सकता है? जिस शुद्ध आत्माका ध्यान करके योगीजन जगलमें प्रसन्न रहा करते हैं, कर्मोंका क्षय करते हैं, परमात्मत्व का विकास करते हैं, वह शुद्ध आत्मा, परमात्मा ही हम आप को उपादेय है।

एक निर्णय करलो अपने जीवनमें कि लाखों का भी धन उपादेय नहीं है। वह तो एक अचानकसी बात है जैसा जिसको मिल गया है, जैसा उदय चल गया है। वहा मुक्ति नहीं चलती है। यह वैभव सारभूत नहीं है। अपने आत्माके स्वरूपके दर्शन से ही तो आनन्द ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। उस ज्ञानकी बात चल रही है। वह ज्ञान किस प्रकार जाना जाता है? उसका क्या स्वरूप है? उ से इस स्थलमें अंतिम दोहेमें कहते हैं।

णाणिय णाणिउ णाणियेण णाणिउँ जा ण मुणेहि।
ता अण्णाणिं णाणमउँ किं पर बंभु लहेहि॥१०८॥

हे ज्ञानी! ज्ञानवान आत्मा सम्यग्ज्ञानके बलसे ज्ञानमय आत्माको जब तक नहीं जानता तब तक अज्ञान होनेसे उस ज्ञानमय परमब्रह्म को, आत्मस्वरूप को क्या पा सकता है? कभी नहीं पा सकता है। जो कोई आत्माको पाता है वही ज्ञानको पा सकता है। परमब्रह्म क्या? ब्रह्म शब्दका अर्थ है 'स्वगुणैः बृहणाति इति ब्रह्म।' जो अपने ज्ञानसे बढता हुआ रहे उसे ब्रह्म कहते हैं। आत्मापर कोई आवरण हो और इसका ज्ञानगुण दब जायें, दब जाये, मगर आवरण हटते ही ज्ञान एकदम वृद्धिगत हो जाता है। जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यमें पड़ा है, उसके नीचे बादल आ जाये तो भले ही प्रकाश नहीं आ सकता पर बादल हटते हैं प्रकाशके आनेमे कुछ विलम्ब है क्या? जहा बादलोंका आवरण हटा, तुरन्त प्रकाश आयेगा। इसी प्रकार इस ज्ञानमय आत्माको रागद्वेषादि विकार दाबे हुए हैं तिस पर भी यह प्रकाशको लिए हुए ही तैयार रहा करता है। जैसे ही राग द्वेष कम हुए, ज्ञानका विकास बढेगा या यह आत्मा अपने आत्माके द्वारा ही जाना जाता है और ज्ञान लक्षणरूपमें ही जाना जाता है।

भैया! जब तक मिथ्यात्वरागादिक विकल्प जड़रूप अज्ञानभावसे यह जीव रहता है तब तक क्या उत्कृष्ट ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त कर सकता है? नहीं। जितने काल आत्मा अपने आत्माको अपने आत्माके द्वारा, अपने आत्माके लिए, अपने आत्मासे आत्मामें रहने वाले आत्माको जब तक नहीं जानता, रागादिक विकल्पसमूहों को छोड करके जब तक अपनेको नहीं जानता तब तक परमब्रह्मस्वरूपी, शुद्ध आत्माको नहीं प्राप्त कर सकता। वस्तुके शुद्धस्वरूपको समझनेके लिए बड़ा ज्ञानबल चाहिए, अर्थात् रागद्वेष

रहित वृत्ति चाहिए। उससे ही शुद्ध निर्दोष परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। और ऐसे परमात्मस्वरूपकी दृष्टि ही हम आपका हित कर सकती है। सो सर्व उपाय करके इस शुद्ध आत्माके ज्ञानमें ही हम आपको जुटना चाहिए।

आत्माको जाननेका उपाय आत्मासे भिन्न नहीं है। आत्मा ही जानता है, आत्माको जानता है, आत्माके ही द्वारा जानता है, आत्मा ही के लिए जानता है, पर ऐसी स्थिति तब प्राप्त हो सकती है जब समस्त रागादिक विकल्पजालोंका यह त्याग कर सके। रागादिक भाव तब त्यागे जा सकते हैं जब मोह न रहे। मोह कहते हैं अज्ञानको। सर्व पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं और उनका अपने को स्वामी समझना इसको ही कहते हैं। यह मोह मिटेगा वस्तुस्वरूपके यथार्थज्ञानसे। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है पररूप से नहीं है। अपनेमें ही बदल रहा है दूसरेमें नहीं बदल रहा है। प्रदेशवान् है और किसी न किसीके द्वारा गम्य है। यों प्रत्येक पदार्थको स्वतंत्र-स्वतंत्र समझ लिया जाये तो वहां मोह नहीं रहता। जैसे मान लिया कि यह घर मेरा है तो यह मोह है, अगर घरके स्वरूप, घरके चतुष्टयको जान लिया जाये और अपने स्वरूप चतुष्टयको जान लिया जाये तो फिर मोह नहीं रहता है। मोह रागको त्याग कर अपने आपमें स्थित आत्माको जो जानता है वही निर्दोष परमात्मतत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

अब इसके बाद परलोक शब्दकी उत्पत्ति द्वारा परलोक कौन है? इस बातको कहते हैं —

जोइज्जइर्ति बभु परु जाणिज्जइर्ति सोइ।
बभु मुणेविणु जेण लहु गम्मिज्जइ परलोइ ॥१०६॥

यह परम ब्रह्म परमात्मा उस पुरुषके द्वारा जाना जाता है जो पुरुष अपने स्वरूपको जानकर इस परलोकको शीघ्र प्राप्त होता है। अब देखो यह यहां लोक है और यहीं पर लोक है, इसही आत्मामें यह लोक है और इसही आत्मामें परलोक है। रागद्वेष विकल्पजालसहित बाह्यपदार्थोंकी ओर उन्मुख हो गया तो उसके यहां यह लोक है और भ्रमजाल छोड़कर अपने आपमें बसे हुए शुद्ध ज्ञानस्वरूप में उपयोग लगा दें तो यही परलोक है। बाहरमें तो है लोक और अन्तरमें है परलोक। जैसे किसीसे बात करें और बात करते हुए किसी आश्चर्य घटनामें पहुच जायें तो उससे कहते हैं वाह तुम तो एक दूसरी दुनियामें पहुच गए। दूसरी दुनियां क्या है? जिसको बस लोग मानते हैं, जानते हैं वह तो है यह दुनिया और जिसे सब नहीं जान सकते हैं, केवल कोई ही जानता है तो वह है परलोक, वह है एक न्यारी दुनियां। तो मेरी न्यारी दुनिया मेरा परमात्मस्वरूप है।

इसका निर्णय परमात्माके स्वरूपके दर्शनसे होता है। जैसे कोई एक चौडी नदी है। एक आदमी उस नदीके रास्तेसे पार हो रहा है, निकट पहुच रहा है, तो उसको देखकर आप उस रास्ते से चलकर तीर पर पहुंच जाते हैं कि नहीं ? पहुंच जाते हैं। और आप कहेंगे कि जो आदमी किनारे पहुच गया वह मुझमें कुछ करता ही नहीं, मुझे पार करता नहीं, खींच ले जाता नहीं, परपदार्थ है उसको क्यों तकें ? मुझको यों देखना पड़ता है कि मुझे अपना मार्ग सही मिल जाये। परमात्माके निर्दोष सर्व ज्ञानमय अनन्त आनन्दमय स्वरूपके दर्शन करनेसे विकल्प क्लेश सब समाप्त हो जाते हैं और अपने आपके उस शुद्ध ज्ञानानन्दका अनुभव होता है। इसलिए परमात्मस्वभाव आराध्य है।

भैया ! कैसे माना जाये कि यह मैं आत्मा ज्ञान और आनन्दसे भरपूर हूं ? इसके दो ही तो उपाय हैं— (१) अपनेमें अनुभव जगे और (२) ऐसे जो बन गए हैं उनमें विश्वास हो, यह परमात्मस्वरूप अत्यन्त पवित्र है। ज्ञानानन्दमय है, आनन्दघन है। वह परमात्मतत्त्व उन्हें शीघ्र प्राप्त होता है जो अपने आप उन रागादि विकल्पजालोंको छोड़कर अपनेको अनुभवते हैं। मुक्त होकर आत्मा लोकके अग्रभाग पर ठहरता है वही ब्रह्मलोक है, वही विष्णु लोक है और वही शिवलोक है। और यह अन्तरमें जो अनादि अनन्त शाश्वत प्रकाशमान लोक है वही ब्रह्मा विष्णु और शिव है। मैं सत् हूं। मेरा कुछ न कुछ परिणमन होता ही रहेगा। मेरे पर मेरी पूरी जिम्मेदारी है। दूसरा कोई मुझे पार नहीं लगा देगा—ऐसा जानकर अपने आपके उस आनन्दघन चैतन्यस्वभावको देखो। इसी सम्बन्धमें और कहते हैं।

मुणिवरविंदहँ हरिहरहं जो थणि णिवसइ देउ।
परहँजि परतरु णाणमउ सो वुच्चइ परलोउ ॥११०॥

जो मुनिवरवृन्दोंके मनमें बसा करता है, जो हरिहरके मनमें बसा करता है, जो परसे अर्थात् उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट है—ऐसा जो ज्ञानमय तत्त्व है वह प्रयोग किया जाता है। मुनिजन वनमें रहते हैं और वर्षों व्यतीत कर देते हैं, उनका क्या सहारा है ? इसही परमात्माका सहारा है।

विशल्या पूर्वभवमें एक चक्रवर्तीकी लड़की थी। लक्ष्मण की पत्नी विशल्याकी बात कही जा रही है। वह रूपमें सुन्दर थी। तो सुन्दरताका मिलना भी लोग तो कहते हैं पुण्यका उदय है, मगर आपत्तियोंमें फँसाने वाला है ? उसे पुण्यका उदय कहें या पापका ? खेती की मेड़ पर बेल लगती है जहा कि नीले-नीले फूल मोटी नाक जैसी आकारके होते हैं, उनको कौन तोड़ता है ? फूलते हैं और गिरते जाते हैं। पर गुलाब और बेलाके

आरोप कर दे कि इसमें ५०० रुपये रखे थे। हमने तो तुम्हें सभालने को कहा और तुमने निकाल लिये। प्रेमका यह फल होता है, शांति नहीं है। शांति तो अपने शुद्धचैतन्य स्वरूपमें दृष्टि लगानेमें है।

जिसको हम पूजते हैं अरहंत, सिद्ध गुरुराज वे क्या करते हैं, इस मर्मको न जाना तो पूजा क्या ? अरहंत परमात्मा, सिद्ध भगवान् क्या किया करता है निरन्तर, रात दिन, प्रतिसमय यह मर्म न जाना तो उसे बड़ा न समझा लोगोंने बड़ा कह दिया सो यह भी बड़ा कहने लगा। क्या किया इन भगवंतोंने जो बड़े कहलाये ? मोहका विनाश किया, इन्द्रियों पर विजय की, आत्मस्वरूपमें रति की, रागद्वेष सब खत्म किये। शुद्धज्ञान पूर्ण विकसित हो गया। ऐसी भगवान्के प्रति भावना न जगे तो फिर भगवान्की हमने पूजा ही क्या की ? तो कारणपरमात्मा तो सब जीवोंमें अंतः प्रकाशमान है, और इन पदार्थोंसे जो रागद्वेष जीतकर कर्मोंसे मुक्त हो गया है वह कहलाता है कार्यपरमात्मा। अरहंत देव या मुक्तिको प्राप्त हुआ सिद्ध भगवान् परमब्रह्म, परमविष्णु और परम शिव कहा जाता है।

भैया ! पदार्थोंका स्वरूप निरखो, सत्यस्वरूप समझमें आ जायगा। चूँकि ये पदार्थ हैं इसलिए निरन्तर परिणमते ही रहते हैं। जब यह परिणमन का स्वभाव रखता है तो नई पर्याय उत्पन्न करके पुरानी पर्याय विलीन करते और अपनी सत्ता बनाए रहते। जब ऐसा अणु-अणु कण-कण सबका स्वभाव है तब फिर कोई परिकल्पित लोकव्यापी एक कोई परमात्मा ईश्वर माना जाय तो कैसे घटित होगा ? कैसे बनाता है, कहां बैठकर बनाता है, किन साधनोंको लगाता है, लगातार लगातार बनाता रहता है कि कुछ भूल भी कहीं हो जाती है। जिसके दसों काम हैं, दसों जगह काम हैं, उसके एक दो जगह भूल भी हो सकती है। सर्वस्थितियों पर विचार करो तो बात नहीं ठहरती है और जीवके परिणमन स्वभावको निरखो तो जीवके साथ सदा जीवके परिणमन का स्वभाव लगा है। अणुओंकी सत्ताके साथ अणुवोंका परिणमन स्वभाव लगा है। वे प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं।

रही अब भगवत् स्वरूपी बात। प्रश्न किया जा सकता है कि फिर भगवान् क्या करता है और हमारे लिए क्या करता है ? जब वस्तुपरिणमन स्वभाव वाला है, निरन्तर परिणमता रहता है तो हम भगवान्से क्यों दबें, क्यों हाथ जोड़ें, क्यों सिर नवावें ? इसका क्या उत्तर होगा ? इसका उत्तर यह है कि हम अपने आपके शुद्धस्वरूप को जब जानने चलते हैं तो परमात्माका जो शुद्धस्वरूप है उसका परिज्ञान सहायक होता है। हम निर्विकार, निर्दोष, शांत आनन्दमय हो सकते हैं या नहीं ? हो सकते हैं।

भैया ! बतलावो इतने मनुष्य हैं, कोई पशु है, कोई पक्षी है, इस न्यारी दुनियांमें, इस परलोकमें, इस परमात्मस्वरूपमें कौन पहुंचता है ? जो पहुंच जायें अपने अंत स्वरूपमें बस वही पार हो जाता है। मेरा जो ब्रह्मस्वरूप है वह तो है परलोक और जो दिखने वाली दुनियां है, पचेन्द्रिय के विषयभोगोंके समागम हैं ये सब हैं यह लोक। जो परलोकमें पहुंचता है उसका नया जन्म कहा जाता है। जब यह जीव, मनुष्य उत्पन्न हुआ था तो एक जन्म तो उसका उस दिन हुआ था कि जिस दिन गर्भसे निकला। यों समझलो। वैसे तो जिस दिन गर्भमें आया उस दिनसे जन्म माना जाता है पर लोकरूढ़िमें जिस दिन गर्भसे निकला उस दिन जन्म समझ लिया। एक जन्म तो उस समय हुआ था। उस जन्म के बाद फिर बड़ा हुआ, फिर दंद फंदकी बातें भी आईं, बड़ी ठोकरें भी खाईं, सब कुछ ठुकपिट कर जब ज्ञान होसहवासमें आया और इस असार दुनियासे वैराग्य हुआ, रागादि विकल्पजालोंका त्याग किया और निजमें बसे हुए शुद्ध ज्ञानस्वरूपमें उपयुक्त होगए तो वह हुआ दूसरा जन्म। पहिले ही जन्मको लिए हुए लोग बैठे हैं। दूसरा जन्म नहीं प्राप्त करना चाहते।

दूसरा जन्म है आत्मानुभव होना। वह पुरुष दूसरी बार जन्म ले चुका समझो। अब पहिली बातें उसके नहीं रहीं। पहिले मिथ्यात्व था, मोह बढाना, राग बढाना - ये सारे दंदफंद चल रहे थे। अब उसकी दुनियां अलौकिक हो गई है। यही है परलोकमें पहुचना परमात्मस्वरूपमें बसना, यही ब्रह्मस्वरूप है। इसे परलोक कहो, परमात्मतत्त्व कहो एक ही बात है। जो यह शुद्ध निश्चयनयसे शक्तिरूपसे केवलज्ञान स्वभाव वाला परमात्मा है वह परमात्मद्रव्य एकेन्द्रिय हो, दो इन्द्रिय हो, तीन, चार, पाच, इन्द्रिय वाला हो, सूक्ष्म हो, सभी जीवोंके स्वरूपमें पृथक् पृथक् रूपसे ठहरता है। इस को ही लोग परमब्रह्म कहते हैं, परम शिव कहते हैं, परम विष्णु कहते हैं। सो यह देवत्व शक्तिरूपसे सब जीवोंमें विराजमान है। द्रव्यत्व वही है, पदार्थ दूसरा नहीं है। पर बहिर्मुखता हो गई, बाह्यपदार्थोंमें दृष्टि उलझ गई इस कारणसे यह आकुलतावोंमें पड गया। किसी से प्रेम किया तो उसके फलमें शांति न मिलेगी, आकुलताएँ ही मिलेंगी। जो अपने आत्मासे ही रुचि रखता है, किसी दूसरेसे प्रेम नहीं करता वह शांति प्राप्त करता है।

आप रेलगाड़ीमें बैठे जा रहे हों और किसी मुसाफिरसे आप प्रेम करलें और उस मुसाफिर को जाना है प्लेटफार्म पर चाय पीने या नल पर पानी पीने तो वह यह कहेगा कि देखो हमारा यह सामान है, दिखते रहना। आपने देख लिया। अगर वह मित्र कुमित्र निकल गया और आप पर

फलोंका उदय है ना, सब योग चाहते हैं ना तो उसकी गति क्या होती है कि पूरे फल नहीं हो पाते हैं, कच्ची कलिया ही तोड़ ली जाती है। यह है पुण्यवानों की गति। तो उस चक्रवर्ती की पुत्रीको कोई हर ले गया, फिर उससे कोई दूसरा छुड़ा ले गया, फिर पकड़ने वालोंने घबड़ाकर उसे एक भयानक जगल में छोड़ दिया, जिसके चारों ओर १०-२० मीलसे निकलने वाला कोई रास्ता भी न था।

अब बेचारी सुकुमाल राजपुत्री जगलमें क्या करे? कपडे भी जितने वह पहिने थी, सब मालभरमें फट गए। अब तन भी कैसे ढाके? पर उस जगलमें ही अपने ज्ञान बलसे नगी रहकर अथवा वल्कल पहिन कर और वहाके कभी कोई फल पानी खा पीकर परमात्मा के ध्यानमें लग गई। ४ हजार वर्ष तक तप किया। और देखो कि पिता चक्रवर्ती सब जगहोंसे ढूँढता हुआ उस स्थान पर पहुचा तो उस पुत्रीको कैसी दशामें देखा कि एक अजगर उसे कमर तक लील गया और कमरके ऊपरका धड़ बच गया। ऐसे समयमें पिताने चाहा कि इस सापके टुकडे कर देवें। उसने अपनी कमरसे तलवार निकाल ली। उस समय पुत्री हाथ जोड़कर कहती है कि अब इस अजगरके प्राण मत लो, इसने जो मेरे साथ किया सो किया। इस अजगरके तुम प्राण मत लो। एक अभयदान दिया। वही पुत्री स्वर्गमें देवी हुई और वहासे आकर विशल्या नामकी राजपुत्री हुई। उसकी तपस्याके प्रभावसे इतना चमत्कार था कि उसके नहाए हुए पानीका छींटा जिस पर पड़ जाय उसका रोग दूर हो जाय।

जब रावणके साथ युद्धमें शक्ति लक्ष्मणके लग गई और लक्ष्मण बेहोश हो गए, उस समय रामचन्द्रजी ने बड़ा विलाप किया था। भाईको मरा हुआ सा देखकर भी रामकी कोई युक्ति न चली। राम बडा विलाप करने लगे। कोई युक्ति सूझी, मालूम पड़ा कि विशल्याके प्रतापका ऐसा चमत्कार है कि उसके नहाए हुए पानीकी छींट पड़ जानेसे सब कष्ट दूर हो जाते हैं। सो उसके नहाए हुए पानीके छींटे लावो, जिससे कि मूर्छा दूर हो। लोगोंने कहा लावो विशल्याका पानी। यह काम हनुमानको सौंपा गया। हनुमानने कहा कि कहो पानीके छींटे ले आएँ, कहो विशल्याको ही यहा ले आएँ। यह भी विशल्याका पिता सुन चुका था कि विशल्याका पति तीन लोकका अधिपति होगा। हनुमानने आकर विशल्याके पितासे सब कुछ सुनाया। राजा भी सुनकर विह्वल हो गए और विशल्याके सहित युद्धक्षेत्रमें आ गए। विशल्याने आशीर्वाद दृष्टिसे लक्ष्मणको निरखा। विशल्याकी दृष्टि पड़ते ही लक्ष्मणकी बेहोशी दूर हो गई।

मनुष्यको हिम्मत कभी न हारना चाहिए। गरीबी आए तो आए, जब परिवारमें आपके १०-१५ आदमी जुड़ गए तो क्या ये मरेंगे नहीं ? मरेंगे। और खुद भी मरेंगे। पहिले आप मरें या जो दिखते हैं वे मरें। क्या वे मरेंगे ना दुःखी न होना पडेगा ? दुःखी होना पडेगा। कहा फूले फिरते हो, कहा हर्ष मग्न हो रहे हो ? कोई स्थिति आग, इष्ट वियोग हो जाय, अनिष्ट संयोग हो जाय, धनकी हानि हो जाय, अपने ही परमात्म-देवकी शक्तिका विचार करो और अपनेको सबसे न्यारा चित्स्वरूप मात्र निरखकर प्रसन्न रहो। कुछ भी होता हो चैतन्यस्वरूपका क्या बिगाड हो सकता है ?

यह परमात्मदेव बडे पूज्य मुनिवृन्दके मनमें विराज रहा है। इन लटोरों वमीटोंके मनमें परमात्मदेव नहीं आ सकता है। यह परमात्मा प्रेम से खिचा-खिचा फिरता है। जब चाहो तब निर्दोष ज्ञानमात्र प्रभुके दर्शन हो सकते हैं। तो यहाके समागमोंसे क्या विश्वासका भाव लेना। जिसे आप विरोधी मानते हो, शत्रु मानते हो, उससे प्रेम बढा लो, शत्रुता विलीन हो जायगी। शत्रुता मिटालो वही मित्र रूपमें आपके सामने आयगा। इस परमात्मतत्त्वके जाननेकी तीव्र रुचि होनी चाहिए, फिर यह दर्शन अवश्य देगा। दृढ़ निश्चय करलो। मोह और राग यदि बढ गया तो मरकर जब गाय बैल बनोगे तो वहा पर भी बच्चोंसे राग करोगे। इसी प्रकार यदि गधा सूवर बने तो वहा भी अपने बच्चोंसे राग किया। इस मनुष्य भवको राग और मोहसे अछूता समझलें, बनाले तो ससारके दुःखोंसे हम पार हो सकते हैं। यहा कह रहे हैं कि जो उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट है, केवल ज्ञानसे रचा है, बडे-बडे मुनिवृन्दोंके मनमें बसा है उसको तुम परमात्मा जानों, परलोक जानों, दुनिया मानो, इसके ही दर्शनसे शाश्वत सुखका लाभ होता है।

यहा यह बताया जा रहा है कि परलोकका अर्थ है शुद्ध आत्मा। जैसे किसीको समझाया जाय कि तुम वह हो जो किसी एक पर्याय रूप नहीं हो। सब पर्यायोंका मूल आधार असाधारण शक्ति मात्र हो, केवल चैतन्य प्रतिभास हो। ऐसे उसको परम पारिणामिक भावकी ओर ले जावें तो उसे ऐसा लगेगा कि मुझे किस दुनिया में पहुचाया जा रहा है ? वह दुनिया इस दुनियासे विलक्षण है या नही ? है। यहाके विषयकषायके प्रसग तो कहलाते हैं यह दुनिया, यह लोक, और शुद्ध आत्मतत्त्व कहलाता है परलोक अथवा पर कहिए। उत्कृष्ट सारभूत तत्त्वका जहा अवलोकन होता है उसे कहते है परलोक। कारणसमयसार परमात्मद्रव्यका जिस दृष्टिसे अवलोकन हो रहा है उस दृष्टिकी स्थिति परलोक कहलाती है और जहा वर्तमान

क्षणिक औपाधिक रागादिक प्रसंगोंमें चित्त चल रहा है यह सब है यह लोक।

उत्कृष्ट वीतराग चिन्दानन्द एकस्वभाव वाले आत्माका अवलोकन कहां होता है ? निर्विकल्प समाधिमें। तो निर्विकल्प समाधि में ऐसे शुद्ध अद्वैत तत्वका अनुभवन हो सोई परलोक गमन है, अथवा पर कुछ जिसमें देखा जाय, परमें जिसके द्वारा देखा जाय उसे कहते हैं परलोक। जितने जीवादिक पदार्थ हैं वे इस परमात्मस्वरूप में केवल ज्ञानके द्वारा देखे जाते हैं ना ? तो केवल ज्ञानके द्वारा जिस स्वरूपमें यह समस्त विश्व देखा जाय उस स्वरूपको कहते हैं परलोक। और व्यवहारसे जो मोक्ष है, स्वर्ग है उसे परलोक कहते हैं। वर्तमान भव मिट गया, इसका नाम परलोक है। तो इस दोहेमें क्या शिक्षा दी है कि परलोक शब्दके द्वारा वाच्य जो परमात्म पदार्थ है, यह परमात्म पदार्थ है, उपादेय है।

देखिए सबसे बड़ी कमाई अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि पा लेना है। और बातोंमें लगना पड़ता है लगें, बधन, फँसाव-परिस्थिति जो कुछ है, लाखोंका धन कमा लिया जाय, इससे कुछ लाभ जीवको नहीं हो गया। ज्ञानी पुरुष तो अपने उपयोगको विशुद्ध रखने के लिए कार्य करता है। ज्ञानी गृहस्थ वाकई तो अपने उपयोगको विशुद्ध रखने के लिए बस रहा है। ज्ञानी गृहस्थ ६ आवश्यक कार्योंमें लगता है। देवपूजा आदिकमें अपने उपयोग को विशुद्ध रखने के लिए रहता है। उसका लक्ष्य अपने परिणामोंको निर्मल बनाने का है, मलिनतासे बचानेका है। खाली दिमाग शैतानका घर। कुछ कार्य न हो तो अटपट थोती कल्पनाएँ होने लगती हैं। अत शुभोपयोग सम्बन्धी कार्य तो होना चाहिए, पर ज्ञानीकी दृष्टि शुभोपयोगमें वर्तकर भी एक शुद्धतत्वकी प्रतीतिको लिए हुए रहती है। उसका परलोक उसका परम ब्रह्मस्वरूप है। वह परम ब्रह्मस्वरूप ही उपादेय है। इस ही शुद्ध आत्मतत्वके सम्बन्धमें अथवा ज्ञानके स्वरूपके सम्बन्धमें कहते हैं।

सो पर वुच्चई लोउ परु जसु मइ तित्थ वसेइ।
जहिं मइ तहिं गइ जीवहजिणियमें जेण हवेइ ॥१११॥

वह परलोक है— ऐसा पर लोग कहते हैं, अर्थात् उत्कृष्ट पुरुष इस उत्कृष्ट लोक को बताते हैं। जिस भव्य जीवके जैसी मति बस गई है अथवा जैसी गति होती है वैसी ही ज्ञानकी स्थिति होती है। जिसका चित्त निज परमात्मस्वरूपमें बस रहा है, विषय कषायके विकल्पोंका त्याग करनेके उपायसे जिसका चित्त निज ज्ञानस्वरूपमें स्थिर हो रहा है, उसको तुम परलोक जानों। कोई बड़ी बढ़िया बात सुनाई जाय तो कहते हैं, वाह तुमने

तो अलौकिक दुनियांमें मुझे पहुचा दिया। तो सर्वोत्कृष्ट बात है अपने आत्माके शुद्धस्वरूपकी, जिसके जान लेने पर ससारके समस्त सकट सदाके लिए विदा हो जाते हैं। उस स्वरूपमें पहुंच जाये तो वही तो कहलायेगा कि लो यह उस अलौकिक दुनियांमें पहुच गया। यह मन अलौकिक दुनियांमें कैसे पहुंचता है? इसका उपाय है स्वसम्वेदन, ज्ञानका ज्ञान? शुद्ध स्वरूप में पहुचनेके उपायमें आपको पहिले बहुतसी बातें जाननी होंगी।

आपके घरका जो जीना है उसे आप जानते हैं ना। जीना उसे कहते हैं कि जो गिरे वह जिये ना, मर ही जाये। तो आपने जीना भी जाना होगा, तिजोरी भी जानी होगी, आप चौकी को जान रहे होंगे, इस शरीरको भी जान रहे होंगे। अब जरा जाननेका जानन करो, चौकीको जान गए यह तो ठीक है, पर चौकीका जानना भी तो कुछ तत्त्व है, उस तत्त्वको जानो कि वह क्या है? जो जाननका ही जानना कर लेता है उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। ज्ञानी पुरुष तो उस जाननके जाननेमें लगे तो ऐसा अनुभव होगा कि हम तो किसी अलौकिक लोकमे पहुंच गए हैं। इस लोकका तो सबको बहुत-बहुत परिचय है, पर इस लोकसे तो वह अपना लोक विलक्षण है ना। जिसकी बुद्धि परमात्मतत्त्वमें ठहरती है, वह स्वय उत्कृष्ट है और उस उत्कृष्ट स्वरूपके देखनेका नाम है परलोक गमन। जिस कारणसे इस शुद्ध आत्मस्वरूपमें बैठे हुए हैं उस ही कारणसे इस शुद्धस्वरूपमें बैठे हुए हैं, उसही कारणसे इस शुद्धस्वरूपमे गति होती है।

भैया! आत्मा और शरीर जुदा हैं। ऐसी जुदा कर देने वाली चीज है क्या? प्रज्ञा। शरीर जुदा है और आत्मा जुदा है—ऐसा जानकर शरीरको छोड़कर केवल आत्माको ग्रहण करना, इसका उपाय क्या है? प्रज्ञा। आत्माको ग्रहण करके फिर आत्मस्वरूपमे ही रत हो जाये इसका उपाय क्या है? प्रज्ञा। तो जिस उपायसे शुद्धस्वरूपको जानें उस उपायसे ही शुद्धस्वरूपका का गमन होता है। और यदि आर्तरौद्र ध्यानके आधीन बन कर निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनासे च्युत होकर, पर भावोंरूपसे वर्तमान है तो वह दीर्घससारी होता है और यदि निश्चय रत्नत्रयस्वरूप शुद्ध ज्ञान मात्र परमात्मतत्त्वमें भावना करता है किसी प्रकार तो यह मैं तो ज्ञानमात्र हू, वह ज्ञान भी ज्ञानके समय निर्विकल्प नजर आता रहे। यह भावना रखो कि लो यह मैं तो ज्ञानमात्र हू—ऐसे ज्ञानस्वरूपमें बुद्धि रखे तो वह निर्वाण को प्राप्त होता है।

भैया! जरासी मोड़मे ही ससार और मोक्षका अन्तर है। जैसे छोटी बैट्री है उसको जिस ओर करके जला दिया, इधर तो उजेला है और उसके

दूसरी ओर अंधरा है और जरासा मोडकर दूसरी ओरको घुमा दिया तो उधर प्रकाश हो गया और उसके दूसरी ओर अंधेरा है। ऐसा ही यहा प्रयोग है, लाइट है। इसका मुख इस ओर हो गया तो निर्वाण मार्ग है, शांतिका मार्ग है और इसका मुख उस ओर कर दिया तो फिर बहिर्मुखी प्रकाश रहेगा। मुँह दूसरी ओर करनेके लिए कोई लम्बी फेंक नहीं फेंकना है, थोड़ा सा ही घुमाने का काम है। इसी प्रकार यह उपयोग अपनेमें ही तन्मय होकर रह रहा है। रह रहा है अपने ही प्रदेशोंमें, पर उसका मुख दूसरी ओर हो गया तो वह दीर्घससारी बन गया और अपनी ओर मुख रहे उपयोगका तो वह निर्वाणको प्राप्त होता है—ऐसा जानकर समस्त रागादिक विकल्प त्यागके द्वारा अपने शुद्धपरमात्मतत्त्व की ही भावना करनी चाहिए।

भैया! परमात्मतत्त्वकी भावनाके लिए, परमात्मतत्त्व की भेंट करने के लिए हमें अपने कषायोंके त्यागरूप बड़ी बलि करनी होगी। अपने विभावों की, रागादिक भ्रमवासनावोंकी जब समाप्ति करेंगे तब उस परमात्मस्वरूप की भेट हो सकेगी। यों ही नहीं कि लो अभी थोड़ा और काम करलें, धर्मका भी थोड़ा काम करलें, सो ऐसी कुछ मनमानी पद्धति न बनेगा। या तो घर का काम करलो या धर्मका करलो या मोह राग द्वेषसे लिपटलो या प्रभु दर्शन करलो। प्रभु दर्शन करनेके लिए इतनी बडी तैयारी चाहिए कि तन, मन, धन, वचन किसीका भी पक्ष न हो। अपने आपके हृदयमें किसीका भी ग्रहण न हो। भगवान् तो तैयार बैठा है आपके इस आसनपर बैठनेके लिए, पर इस उपयोगके आसनपर आपने विभावोंको बिठा रखा है सो भगवान्को बैठनेके लिए जगह नहीं है। वह तो तैयार है कि हमें आसन मिले तो बैठ जाएँ, वह तो आसन पर बैठने के लिए है, मगर जब सीट खाली हो तब तो भगवान आकर बैठे। सीट ही नहीं खाली है, रागद्वेष, सकल्प विकल्प इन सबका जमाव कर रखा है, किन्तु शुद्ध भोलाभाला प्रभु जिसका ज्ञानमात्र ही रहना काम है, ऐसे शात प्रभुको बैठनेके लिए आप सीट नहीं खाली कर रहे हैं तो वह आपके पास कैसे आयेगा बतलावो। तो उस प्रभुके दर्शनके लिए तो रागादिक विकल्पोंका त्याग करना है।

भैया! दो बातें एक साथ नहीं हो सकती हैं। विषयभोग और मोक्षमें जाना। 'दोउ काम नहीं होय सयाना। विषयभोग अरु मोक्षमें जाना॥' २४ घटे पडे हैं, इन २४ घटोंमें १०–१५ मिनटको तो सबको भूलकर अपना प्लेटफार्म साफ बनालो। बाकी तो पौने चौबीस घटे हैं, सो उनमें एकदमसे परद्रव्यों में लगे रहना। पुण्यका उदय है, कौन तुम्हें मना करता है? पर १०–५ मिनटको तो अपने आपके उपयोगको निर्मल बनालो। किसी भी परकी

आशा न करो, किसी परका विकल्प न हो, ऐसी अपनी परम दशा बनालो। उसमें सब सिद्ध हो जायेगा। जैसे इत्रकी फुरैरी एक ही बार लेना है फिर तो सुवास दिन भर बनी ही रहेगी, कुछ भी काम करते रहो, सुवास बनी ही रहेगी, लगातार इत्रकी फुरैरी लेनेकी जरूरत नहीं है। वह तो एक बार लगा कर अपने काममें लगा है, सुवास आती जा रही है। तो २४ घंटेमें ५ मिनट तो परमार्थ प्रभुभक्तिका काम तो निकाल लो। वह सुवास तो बना लो फिर और और भी काम करते रहो घरके, कमाईके, कुटुम्ब पोषणके, वह सुवास बराबर आपको मिलती रहेगी, शांति और निराकुलता बनी रहेगी। पर दिन रातमें एक बार भावना बनावो तो सही।

यहा तीन बारकी सामायिक बताया है, वह इसलिए बताया कि सुबह सामायिक किया, याने समता परिणाम किया। उसके बाद फिर पड़ गए अड़चनोंमें, और-और अड़चनोंमें यदि फँस गए तो ६ घंटेका फिर समय फँस गया, वे ६ घंटे हुए दोषके, ६ घंटोंमें जो असावधानी बन गई उसको दूर करनेकी चेष्टा सामायिकमें की। दो बार सामायिक हो गई। इसके बाद फिर ६ घंटे बाद चूँकि उसकी भी दलमें फँस गए तो फिर सामायिकका टाइम आ गया। उन ६ घंटोंकी असावधानीको फिर सामायिकमें ठीक कर लिया। फिर उसके बाद रात्रिके १२ घंटे गुजरते है। तो ६–७ घंटे सोनेके गुजर गए और जागनेके जो ६ घंटे बचे उनकी सामायिक फिर कर लिया। तो जो सामायिकके समयका अन्तर है वह बराबर ६ घंटे चल रहा है। ६ घंटे तो सोनेमें गए और जगने के ६–६ घंटेके बादमें सामायिक होती है। तो दिन रातकी असावधानीमें अपन पड़ गए तो अब सावधानी रखनेके लिये ५ मिनट ही निश्चित करलें। ५ मिनटको भी, क्षण भरको भी यदि अपना उपयोग ऐसा शुद्ध बन जाये कि हमें किन्हीं भी परवस्तुवोंसे प्रयोजन नहीं है तो इसका भला होनेमें कोई सदेह नहीं है। पर इतनी बात बने कैसे?

भैया! कोई सोचे कि भलाईका काम २ मिनटमें बना लेंगे। बाकी समय खूब मौजमें रहे तो न बन सकेगा। तुम तो रात दिनका काफी समय ज्ञानार्जनमें, ध्यानमें, चर्चामें उपदेशमें लगावो। सबसे अच्छा काम है लिखना। धर्मकी बात लिखनेमें बड़ा निर्मल उपयोग रहता है और यदि उपयोग निर्मल होता है तो आत्मामें बल प्रकट होता है। बहुत बड़ा काम करना होगा तब जाकर कहीं ऐसा अवसर पा सकेगा। यह कि जहा उपयोग को निर्मल रखकर प्रभुतामें दर्शन किया जा सकता है। एक मिनटकी भांवर पड़नेके लिए तीन महीने बीत जाते हैं। एक मिनट की भांवर वही है जो

सातवीं भांवर पड़ती है और विवाह हो जाता है। विवाह तो उस एक ही मिनटमें होता है और उसकी तैयारियां महिनों पहिलेसे की जाती हैं। कोई कहे कि ये आडम्बर करनेकी क्या जरूरत ? अरे ! इन आडम्बरोंके बिना उस एक मिनटका मूल्य नहीं रह सकता। कोई कहे कि विवाह दिल मिला किसीसे और १ मिनटमें ही विवाह हो गया तो इसमें धर्म-प्रभावना नहीं रहेगी, जीवनका नियम बन्धन नहीं रहेगा, पाप फैल जायगा।

तो जैसे उस एक मिनटके विवाहके अवसरके पाने के लिये महीनों गुजर जाते हैं, तो इस एक मिनटके निर्मलभावोंको पाने के लिये आपका कितना समय गुजरना चाहिये कि जब वह चीज प्राप्त हो सकेगी। इसलिये एक निर्णय रखो कि खुदका लोटा छानो, जिससे आपको अपनी प्रगति जचे, निर्मलता बने, स्वाध्याय करो, सत्संग भाव बनाओ, उदारवृत्ति रखो, मोह ममता हटाओ। अच्छी बातोंके लिये अपनी लगन होनी चाहिये, तब जाकर किसी समय वह अवसर प्राप्त होगा, जहां ज्ञानज्योतिर्मय प्रतिभासमात्र प्रभुस्वरूपका अनुभव होगा। सो इस ज्ञानके अनुभवके लिये इन संकल्पों विकल्पोंके त्याग करनेकी आवश्यकता है। इस ही ज्ञानस्वरूपको अब अगले दोहेमें बताते हैं कि—

जहिं मइ तहिं गइ जीव तुहु मरणु व जेण लहेहि।
ते पर बभु मुएवि मइँ मा परदव्वि करेहि ॥११७॥

हे जीव ! जहां तेरी बुद्धि है, वहां ही तेरी गति है। तुम्हें प्रभुस्वरूप को जानना है तो प्रभुस्वरूपमें बुद्धि धरो। जहां बुद्धि लगायेगा, वहां ही उसका गमन होगा। उसको जिस कारण से तू मरकर भी पायेगा, इसलिये तू परमब्रह्मको छोड़कर परद्रव्योंमें बुद्धि मत कर। जैसे व्यवहारमें कहते हैं कि 'चाहे मर जाओ, पर यह काम न करो।' तो यहां आचार्य देव सीधी भाषामें कहते हैं कि 'चाहे मर जाओ, परन्तु परद्रव्योंमें आत्मबुद्धि न करो, अर्थात् परद्रव्योंमें आत्मबुद्धि करना, किसी भी प्रकार श्रेयस्कर नहीं है।' निजस्वरूप है परमब्रह्म। 'स्वगुणैः बृंहणाति इति ब्रह्म।' जो अपने गुणोंके द्वारा वर्द्धमान रहे, उसे ब्रह्म कहते हैं। इस आत्माका स्वभाव है, अपने ज्ञान और आनन्दगुणका बढ़ते रहना।

भैया ! अपने ही घरमें पैदा हुआ कपूत इस ज्ञान और आनन्दके विकासको रोके तो रुका रहता है, पर उस रुके हुए की हालतमें भी बढती हुई पद्धतिको बनाये हैं। जैसे कोई स्प्रिंग वाला पलंग या कोई कुर्सी है, तो उस स्प्रिंग को हाथसे दबा दो, तो भले ही वह दबा रहता है, पर दबी हुई हालतमें भी वह उठने की पद्धतिको लिये हुए रहता है। उसे थोड़ासा भी

मौका मिले या जरा हाथ ढीला हो तो वह स्प्रिंग तो उठनेको ही रहता है। इसी प्रकार रागादिकभावोंसे दबी हुई हालतमें भी यह ज्ञान और आनन्दकी स्प्रिंग विकसित होनेकी पद्धतिको ही लिये रहती है। इस कारण इस आत्मस्वभावको परमब्रह्म कहते हैं। इस परमब्रह्म शब्द द्वारा वाच्य निज शुद्ध आत्मतत्त्वोंको छोड़कर, हे कल्याणार्थी! तुम परद्रव्योंमें आत्मबुद्धि मत करो।

निज शुद्ध आत्मतत्त्व कैसा है? यह मर्म जब ज्ञात होगा, तब अपने आपको ऐसा देखने के लिये उद्यत होगा कि मैं, मैं ही हू, मुझमें अन्य किसी का सम्पर्क नहीं है। सम्पर्क है, मगर उस सम्पर्क के सत्को भूलकर और उस उपाधिके सम्बन्धसे होने वाले विकार पर उपयोग न देखकर अपने आपके सत्त्वके कारण जो कुछ मैं हू— ऐसा निरखे तो निज शुद्ध आत्मतत्त्व देखा जा सकता है। इस लोकमें कुछ भी वस्तु बाहरी शरण नहीं है। एकदम समस्त परवस्तुओंको भिन्न और अहित जान लीजिये। चाहे कितना ही व्यवहारसे धन पर अधिकार हो, महल मकान भी हों, कुटुम्ब परिवार भी आज्ञाकारी हो, फिर भी विवेक इसमें है कि उन सबको भिन्न अहित अशरण जानकर अपने परमात्मतत्त्वकी ओर झुको। दुनियाके अन्य किसी पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। ऐसा नहीं है कि इनकी दृष्टिमें हम कुछ अच्छे कहलाए, तो हमारा बड़प्पन हो जायेगा।

यह सारा लोक असख्यात प्रदेश प्रमाण है। ३४३ घन राजू प्रमाणों में यह परिचित क्षेत्र १०० मीलका, ५०० मीलका, १००० मीलका यह परिचित क्षेत्र उस सारे लोकके सामने क्या मूल्य रखता है? समुद्रमें एक बिन्दुका जो अनुपात बैठता है, उतना भी अनुपात इस हजार मीलका सर्व लोकके सामने नहीं बैठता। फिर यहाके मरे कौनसी जगह उत्पन्न होंगे? कुछ क्या सम्बन्ध रहा यहाके पदार्थोंसे? ये सब मिले हैं। इनके ज्ञाताद्रष्टा रहना चाहिये। तो निज शुद्ध आत्मतत्त्व जो कि सदा वीतराग शाश्वत आनन्दके अमृतरससे उसकी भावना परिणत है। इस आत्मामें स्वरसतः क्लेशोका नाम ही नहीं है। यह तो ज्ञान और आनन्दमय है। इसमें क्लेशोका अवकाश ही कहां है? यह आत्मा टांकीसे उकेरी गई प्रतिमा की तरह निश्चल और स्वत सिद्ध है। यह मैं ज्ञानस्वभावी हू। मेरा यह ज्ञानस्वरूप किसी दूसरे पदार्थके द्वारा उत्पन्न किया गया नहीं है। मेरे स्वरूपको कोई एकदम नहीं बना देता। मेरा स्वरूप किसीके द्वारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता। अनादिसे ही मैं अपने चैतन्यस्वरूपको लिये हुए हू। ऐसा टकोत्कीर्णवत् निश्चल चैतन्यस्वरूपमात्र हू। इसीको ही परमब्रह्म

कहते हैं तथा इसीको ही अद्वैततत्त्व कहते हैं।

भैया ! इस स्वस्वभावको छोड़कर किसी भी परद्रव्यमें अपना चित्त मन लगाओ। न इस देहमें, न परिग्रहमे, न विषयोंमें चित्त लगाओ। ज्ञान को बनाए रहो। सब कार्योंमें लगना पड़ना है, फिर भी यथार्थस्वरूप समझो। कोई शरण नहीं होता। यदि ऐसी परिणति बनाई जा सकती है, तो ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वका प्रकट अनुभव कर सकते हैं, यही शुद्ध परमात्म-द्रव्य परलोक है। जैसे किसी समय बहुत बढ़िया दिलचस्प साहित्यका प्रसग छिड़ जाये तो आनन्द एव हास्य अपूर्व बढ जाता है और उस समय कहते हैं कि एक नई दुनियामें पहुच गये हैं। वह नई दुनिया क्या है ? जिसे खोटी दुनियासे परिचय है, उससे हटकर अपूर्व आनन्दसे पूर्ण दुनियाको कहते हैं कि नई दुनियामें पहुच गये। यही मेरा आत्मतत्त्व परलोक है। परलोक शब्दके द्वारा वाच्य निज परमात्मतत्त्वका मर्म अनुभूत कीजिए। अब इसके बाद यह प्रश्न होता है कि वह परद्रव्य है क्या ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं कि—

जि णियदव्वहँ भिण्णु जडु त परदव्वु वियाणि।
पुग्गलु धम्माधम्मु णहु कालु वि पञ्चमु जाणि ॥११३॥

जो आत्मपदार्थोंसे भिन्न जड पदार्थ हैं, उन्हें परद्रव्य जानो और वे परद्रव्य पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल— ५ प्रकारकी जातिके हैं, इन सबको परद्रव्य समझो। ज्ञानकी रुचि जगना, ज्ञानका ज्ञान होना बड़ी अपूर्व मतलबकी बात है। इस जीवने पञ्चेन्द्रियके विषयप्रसगोंमें गधा, सूकरकी गति भी प्राप्त की है और इस मनुष्यभवमें उन विषयप्रसगोंके समय जैसा मूर्ख बन जाता है, ऐसी ही मूर्खता वहा भी है। इस तरह मनुष्य-भवमें कोई अन्तर नहीं आता। पर मनुष्यभवका पाना तब सफल है, जब कारणपरमात्मद्रव्यको निरख लिया जाये, इस ही भवमें आलौकिक दुनियामें पहुच लिया जाये तो यह सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है।

अपनी चर्चामें आधे घटेका टाइम अपनी दयाके लिए नियत रखना चाहिये, चाहे कैसा भी समय आये, कितनी भी उलझने हों, पर अपने आत्मदयाके निमित्त समय पर आत्मभावना किया करें। स्वाध्यायका नियम रखना, दर्शनका नियम रखना, ये फालतू नियम नहीं हैं। मानलो कि १० या १२ दिन आपका दर्शनमें, पूजामें, स्वाध्यायमें मन नहीं लगता है तो यह नहीं सोचना चाहिए कि दर्शन आदिकमें मेरा मन नहीं लगता है, तो यह बेकार काम है, मन्दिर जाना बेकार है, वहा तो मन ही १०-१२ दिनसे नहीं लगता है। मन्दिर जाते हैं, और चित्त यहा वहा रहता है— ऐसा सोचकर

क्या मन्दिर छोड देना उचित है ? नहीं। अगर छोड़ दिया तो फिर छुट ही गया। फिर यहा तो वह अवसर था कि १०-१५ दिन मन नहीं लग रहा, न सही, दो एक दिनमें कभी तो फिर चित्त प्रमुदित हो जायेगा, फिर मन लग जायेगा। यह नियमकी परम्परा नहीं छोड़नी चाहिये। जो बात भली है, इस बातका भी तुम सही उपयोग नहीं कर सकते तो बेकार जानकर छोड़ देना, यह विवेक नहीं है। प्रथम तो यह बात है कि जिस आधे घटेमे आप मन्दिरमे रह रहे हैं, धर्मके काममें लग रहे हैं और मन भी नहीं लगता है, इतने पर भी कषाय तीव्र नहीं है, इसके बजाय घरमें ही उस समय रहते तो वहां कषाय तीव्र हो जाता है। तो धर्म करते हुएमें मन न लगे, फिर भी जबरदस्ती धर्म करने में बैठ जावो तो कुछ न कुछ लाभ तो अवश्य है। मंद कषायोंका लाभ है।

तो इन पर-द्रव्योंसे जुदा हों— यही हम आपका एक लक्ष्य होना चाहिए। आत्मा-आत्मा तो एक समान हैं। चाहे साधुका आत्मा हो, चाहे गृहस्थका आत्मा हो सब एक समान हैं। परिस्थितिका अन्तर आ गया है। पर मूलमे द्रव्य तो एक समान है और साधुसे ही समानता क्या, प्रभुमें और हममें समानता है। जैसा चैतन्यस्वरूप परमात्मा है वैसा ही चैतन्य-स्वरूप मैं हू। इसमें रच भी अन्तर नहीं है। परिस्थिति आज कुछ कमजोर है। यदि मोक्षमार्गमें दृष्टि बनी रहेगी तो मजबूतीकी स्थिति आ जायेगी। इस कारण इस श्रद्धाको कायम बनानेके लिए मैं सबसे न्यारा केवल चैतन्य-स्वरूपमात्र हू। ये सब नियम कीजिए। श्रावकों के जो ६ कर्तव्य है, देवपूजा, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप और दान ये ६ काम तो रोज-रोज करनेके हैं। इनमे ढील नहीं होनी चाहिए। देवपूजा या देवदर्शन रोजका काम है और सेवा गुरुवोंकी यथासमय पर करना यह रोजका काम है। स्वाध्यायमें जो ग्रन्थ तुम्हें स्पष्ट ज्ञानका कारण बनें, हितकारी हों, सुगम हों, उन ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना तुम्हारा रोजका काम है। इस प्रकरणको सुनते हुए सोचते जावो कि हम इन ६ कार्योंमे से कौनसा काम नहीं कर रहे हैं, अथवा कौनसे काममें अत्यन्त कमी कर डाली है। तीन काम हुए देवकी उपासना, गुरुवोंकी सेवा और स्वाध्याय। इसके आगे है संयम।

अपने मनको मनमाना न बनाना, जो इच्छा हुई खानेमें या अन्य सम्बन्धमें वह तुरन्त होनी ही चाहिए— ऐसा अपना मन नहीं बनाना है। बल्कि ऐसा अभ्यास करो कि आज यदि यह मनमे आया कि खोवा के पेडे खाने हैं तो क्यों ऐसा आज मनमे आया ? तो आज मैंने खोवाके पेड़ेका त्याग किया। इसी तरह जो इच्छा जगे, जिस वस्तुकी वाञ्छा हो उस वस्तु

का त्याग करके चले। कभी-कभी ऐसा अभ्यास बनाएँ, संयम करें, अपनी इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखें और ज्ञानकी वृद्धि करें, परमात्मस्वरूपमें उपयोग ले जाएँ। मेरा आहार करनेका स्वभाव नहीं है। इसका स्वभाव तो ज्ञाता द्रष्टा रहनेका है। ऐसे इस चैतन्यस्वरूप अपनेको निरखें तो यही अभ्यास बढकर हमारे मोक्षका मुख्यकारण बनता है। यह सारा परिग्रह पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य—ये समस्त परपदार्थ मेरे द्रव्यसे अत्यन्त जुदे हैं। मेरा स्वरूप तो अनन्तचतुष्टयमय है। पूर्णज्ञान, पूर्णस्थिति, पूर्ण आनन्द और पूर्ण शक्ति हैं, ऐसे अनन्त चतुष्टय स्वरूप निज आत्मद्रव्यसे ये ५ प्रकारके पदार्थ बिलकुल भिन्न हैं।

देखिए भैया! जैनशासनमें पदार्थोंके स्वरूपकी और संख्याकी कितनी यथार्थता कही गई है। मोटे रूपमें तो २ पदार्थ समझमें जल्दी आते हैं जीव और पुद्गल। पुद्गल शब्द जैनसिद्धान्तमें अधिक मिलता है। कितना बेजोड़ शब्द है यह। क्या कहेंगे इन सारी चीजोंको हिन्दीमें कोई एक शब्द बतलावो? ऐसा कोई एक हिन्दीका शब्द बतलावो जिसमें सारी चीजें आ जायें। इन सब चीजोंको भौतिक पदार्थ कहते हैं। इस भौतिक शब्दसे सारी चीजोंका अर्थ निकलता है। जो भूतकालसे उत्पन्न हुई हो उसे भौतिक कहते हैं। और भूतका असली अर्थ क्या है? धातुसे लो। भूतके मायने जो होते हों उसका नाम भूत है, और होती है जो चीज है उसका नाम भौतिक है। भौतिक शब्दमें जीव नहीं है क्या? भौतिकमें यह अर्थ नहीं पड़ा है कि यह चीज ग्रहणमें आये और यह चीज न आये। और जैनशासनकी व्यापकता देखिए शब्दशास्त्रमें, पुद्गल शब्दका क्या अर्थ है जो पूर जाय, गल जाय, सचित हो जाये और बिखर करके अकेला हो जाये उसे कहते हैं पुद्गल। कैसा बेजोड़ शब्द है? प्रसिद्ध नहीं है इसलिए सुनने में अटपट लगता है। किन्तु अर्थको देखो तो इन सब पदार्थोंका वाचक एक शब्द कुछ बढ़िया हो सकता है तो वह शब्द पुद्गल ही बढिया हो सकता है। जीवमें ऐसा नहीं है कि कुछ जीव मिलकर पूर जायें। जैसे बहुत सा आटा लेकर एकमें मिला लिया, ऐसे ५-७ जीव मिलकर एक हो जायें ऐसा नहीं होता और वे जब पूरते नहीं हैं तो गलनेका नाम ही क्या लगाया जाये? इन समस्त दृश्यमान और इनके आधारभूत जो दृश्यमान न भी हों सबका नाम है पुद्गल। पुद्गलसे अपनेको भिन्न देखो।

इसके आगे और अचेतन जातिमें चलिये। धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य कैसा यथार्थ उपदेश है? इस लोकमें धर्मद्रव्य प्रत्येक पदार्थमें व्यापक होकर फैला हुआ है। यहां भी है धर्मद्रव्य। उस धर्म द्रव्यका काम क्या है

कि जीव पुद्गल चलें तो उनके चलनेमें सहायक बनता है। जैसे मछलीके चलनेमे जल सहायक है। जल मछलीको जबरदस्ती नहीं चलाता है पर मछली चलना चाहे तो जलका आश्रय पाकर चल देती है। जल न हो तो नहीं चलती है। इसी प्रकार सर्वलोकमें धर्मद्रव्य व्यापक है। धर्मद्रव्य न हो तो जीव पुद्गल चल नहीं सकता। धर्मद्रव्य हम आपको जबरदस्ती नहीं चलाता है। जब हम चलनेकी क्रियामे परिणत होंगे तो धर्मद्रव्य हमारी गतिमें सहायक है। यह धर्मद्रव्य सूक्ष्म है, ईथर है, सर्वत्र व्यापक है, इस भावार्थकी कल्पनामें वैज्ञानिकोंने कुछ कुछ तो सोचा है कि इस आकाशमे कुछ सूक्ष्म तरगें हैं, जिन तरगोंका आधार पाकर हवा चलती है, शब्द चलते हैं। विदेशमें रेडियो शब्दके उत्पादकसे शब्द बोले जा रहे हैं, मगर वे शब्द गति करते हुए सब जगह व्यापक हो जाते है या उनका निमित्त पाकर और और शब्द परिणमते हुए चले जाते हैं तो ऐसी कोई धर्मद्रव्य नामक भी सूक्ष्म वस्तु है जिसका आश्रय करके जीव और पुद्गल गमन किया करते हैं?

अधर्म द्रव्य जैसा कुछ भी काम हो रहा हो, उससे उल्टा काम अगर हो तो उसमे कोई नई चीज कारण बनती है। किसी अन्य कारणके बिना अनोखी बात नहीं हुआ करती है। चलते हुए जीव पुद्गल ठहर जाये यह पहिले से अनोखा कार्य है और वह कार्य अहेतुक नहीं है, उस ठहरनेमें अधर्मद्रव्य निमित्त है। यह भी धर्मद्रव्यकी भाति समस्त लोकालोकमें व्यापक है। आकाशद्रव्यको आप कहेंगे कि आकाश को तो सब मानते हैं। इसका नाम भी प्रसिद्ध है इगलिशमें स्काई बोलते हैं, सस्कृतमे गगन बोलते हैं और उर्दूमे आसमान बोलते हैं। यह एक पिण्ड है, एक चीज है। इस आकाशमे सर्वत्र परिणमन होता है। ऐसा अखण्ड किन्तु अनन्तप्रदेशी है। ऐसा आकाशद्रव्य कल्पनामें न आएगा। यह आकाशद्रव्य भी मुझसे परे है।

अच्छा देखो—आप आकाशमें रहते हो या आपमे आकाश रहता है? इन दो बातोंको बतलाओ। आप आकाशमे रहते हैं, ऐसा यदि कहेंगे तो यह बात नहीं बनती क्योंकि जैसे कहा कि कलशामें पानी है तो पानी पहिले कलशमे न था। कलशा पानीसे भरा हुआ रख दे तो आप कहते हैं कि कलशमें पानी है और क्यों जी जब उस कलशमें पानी न हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि कलशमे पानी है। तब तो यही कहेंगे कि कलश ही ऐसा है। इसी तरह यह मैं आकाशमे न होऊँ, आकाशसे अलग कहीं

ठहरा होऊं और बादमें आकाशमें आऊं तो यह कहना ठीक है कि मैं आकाशमें हू । अरे ! आकाश है वह अपनी जगह और यह मैं आत्मा अपनी जगह हू । भले ही यह मेल मिल गया कि आकाश है बड़ा और हम हैं छोटे । कभी आकाशके इस प्रदेश पर रहते हैं तो कभी चलकर हजार पाच सौ मील दूरके आकाश प्रदेशमें रहते हैं, पर आकाश आकाशमें है और मैं अपने आपके स्वरूपमें हू । दोनों स्वतन्त्र द्रव्य हैं । मैं आकाशसे अत्यन्त भिन्न हू । चौथा अचेतन द्रव्य है पुद्गल । पांचवा द्रव्य है कालद्रव्य ।

अब देखो कालद्रव्यको भी, जैनसिद्धान्तने ही बताया है । लोकके एक एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य बैठा है और उसका निमित्त पाकर उस कालद्रव्य पर पडे हुए अनेक द्रव्योंमे परिणमनका वह कालद्रव्य निमित्त बनता है ऐसी बात कही । ऐसी सूक्ष्म बात जिसका कुछ युक्ति और दिमागसे बहुत अभ्यासके बाद समर्थन किया करते हैं ऐसा तत्व जैनसिद्धान्तमें अनादि परम्परासे प्रकट होता चला आया है । इन ५ प्रकारके अजीव द्रव्यों से मैं चेतन अत्यन्त भिन्न हु- ऐसा जब इनसे भिन्न अपने आपकी श्रद्धा करते हैं तब यह जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।

देखो भैया ! ये सब पदार्थ जीवसे चिपटे नहीं हैं । धरती आपसे चिपटी हुई नहीं है, कि आप चलें तो आपके साथ घर भी चल दे । अगर ऐसा होता है तो आपको कोई डर ही न था । देश विदेश ही क्या कहलाता ? जहा जाते तहा ही घर चिपटा रहता । तो घर चिपटा है क्या ? नहीं । परिवारका कोई चिपका है क्या ? नहीं । शरीर भी आत्मासे चिपका है क्या ? नहीं । अगर शरीर आत्मासे चिपका होता तो कभी मृत्यु न होती । शरीरके साथ ही आत्मा बना रहता है और आत्माके साथ राग द्वेष बिकार चिपके हैं क्या ? यदि आत्मासे ये रागादिक चिपके होते तो आत्माके साथ सदा रहते । तो मैं इन सब परभावोंसे अत्यन्त भिन्न हूं —ऐसे भाव कर्म, द्रव्य-कर्म, नोकर्मसे रहित केवल ज्ञानप्रकाश मात्र जो अपने आपकी श्रद्धा करता है, वह जीव सम्यग्दृष्टी है, निकट भव्य है, ससारसे पार हो जाने वाला है ।

भैया ! किसी भी जगह आप जायें, पर लक्ष्य एक ही रखें । दूकान पर जायें तो वहा भी एक ही लक्ष्य रखे, घर पर आप रहें या मदिरमें आप रहें, कहीं भी रहें तो आप का एक अनूठा कोई लक्ष्य होना चाहिए । वह अनूठा लक्ष्य है, प्रभुके स्वरूपको जानकर अपने स्वरूपकी ओर दृष्टि दें और सबसे न्यारा केवल ज्ञानमात्र अनुभव करें । इस विधिसे ही सकटोंसे

दूर होने का मार्ग मिलेगा।

इस दोहेमें यह बताया है कि जीवसे सम्बन्ध रखने वाले भावकर्म, द्रव्यकर्म, और नोकर्म हैं। वे निजद्रव्यसे पृथक् चीज हैं, हेय है तथा जो जीवसे सम्बद्ध नहीं हैं ऐसे बाकीके पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये सब भी हेय हैं। कैसा बिकट भाव बधन है कि जिस पदार्थमें अत्यन्ताभाव है, रंच भी सम्बन्ध नहीं है, लाखों विकल्प करें, फिर भी कुछ अपना होता नहीं है, ऐसे बाह्यपदार्थोंमें भी यह सब विकल्प बनाकर बधनमें पड़ा हुआ है। मगर खुद ही कल्पना करके विटकबधनमें पड़ा हुआ है। हम प्रभुको इसी कारण पूजते हैं कि उन्होंने यह व्यर्थका बंधन खत्म कर डाला। अब यह दिखाते हैं कि उनके ध्यानमें इतनी सामर्थ्य है, वीतराग निर्विकल्प समाधिमें इतनी सामर्थ्य है कि अन्तमुहूर्तमें ही कर्मके जालोंको जला देती है।

जइ णिविसद्ध वि कुवि करइ परमप्पइ अणुराउ।
अग्गिकणी जिमि कट्ठगिरिऽहइ असेसु विपाउ ॥११४॥

कोई भी पुरुष इस शुद्ध, कषायरहित ज्ञानमात्र, परमात्मतत्वमें रुचिको करता है, अनुराग करता है वह पुरुष क्षणमात्रमें समस्त पापोंको जला देता है। जैसे अग्निकी कणिका काठके पहाड़को कुछ ही समयमें जला देती है। जब सड़क पर बहुतसा कूड़ा इकट्ठा हो जाता है, तो भी भगी लोग कूड़े को उठाकर नहीं फेंकते, आग लगाकर खत्म कर देते हैं। आग लगा देनेसे सब समाप्त हो जाता है। होलीके दिनोंमें कितना काठका संचय करते हैं, आग लगा दिया कि खत्म हो गया। चाहे वह कुछ समय बादमें खत्म हो, मगर अग्निकी कणिकाकी सामर्थ्य तो देखो कि थोड़ीसी अग्नि इतने बड़े इन्धनके ढेरको जलाकर समाप्त कर देती है। इसी प्रकार यह निर्विकल्प समाधि क्षणमात्रमें ही कर्मजालोंको जला देती है। मगर जो यथार्थ काम है, बड़ा झंझट नहीं है, जो सदाके लिए सुख शांति प्रदान करने वाला है, ऐसा यह आत्मा सयमके कार्योंमें क्यों लगा रहा है? जो बात तुम्हारे आधीन नहीं, कितना ही मनावो, कितना ही श्रम करो, तब कहीं मेल खा सकता है, और यह निजपरमात्मतत्त्व वह तो बड़ा हाजिर है, बस देखने वालेकी देर है।

बुन्देलखण्डमें एक राजमाता थी। सो उसका जो राजपुत्र था वह १० वर्षका था। मगर हजारों रुपया दान कर देता। जैसे कि आजकल बच्चे को २ आने चार आने खर्चके दे देते हैं वैसे ही उस राजपुत्रके हजारों रुपये रोज खर्च होते थे। एक दिन राजमा ने पूछा, बेटा! यह जो सामने पहाड़

है, उस पहाड़ भर स्वर्णका ढेर तुम्हारे सामने रखदें और कहें कि यह दान कर दोगे तो तुम कितने दिनोंमें दान कर दोगे ? तो राजपुत्र बोलता है कि माँ मैं तो आधा मिनटमें सब दान कर दूँगा। अब दान लेने वाले जितने दिनोंमें उठा सकें सो वे जानें। दान देना तो एक त्यागभावका नाम है। इसी तरह परमात्मतत्व सदा मेरेमें विराजमान है। अब देखने वाले जब देख सकें, तब देखें।

तो जैसे अग्निकी कणिका काठके पहाड़को जला देती है, इसी प्रकार यह निर्विकल्प समाधि एक दो सेकेण्डको भी अपने शुद्धज्ञानस्वरूप पर दृष्टि जाय तो यह पापोंके समूहको भस्म कर देती है। भैया ! एक आध सेकेण्डकी कमाई अनन्तकाल तक आनन्द देगी। और यह परद्रव्यवाधक विकल्पोंकी कमाई जिस समय पासमें है, उस समय भी दुःख दे रही है। आ चुका है तो उसकी रक्षा करने के विकल्पका दुःख है। रखे-रखे ही टोटा पड जाए, लुटेरा लूट ले जाए या राज्य हर ले तो उसका क्लेश होता है। और कदाचित् कोई बीमार हो जाय तो उसके पीछे १०-२० हजार खर्च हो जायें। खैर, इसमें तो लोग क्लेश नहीं मानते क्योंकि वे समझते हैं कि किसी तरहसे जान तो बच गई। परिग्रहसम्बन्धी उपाधिकी कमाई, इनका विकल्प यह सब हितका कारण नहीं है। हितका कारण तो वस्तुस्वरूपका यथार्थज्ञान है, जिससे यह आत्मा निर्विकल्प होकर अपने आत्मस्वभाव का आलम्बन लेता है।

अब इस ही अर्थको स्पष्ट करनेके लिए आगे कह रहे है कि यह तत्व ध्यानरूपी अग्निकी कणिका चिरकालसे सचित किए हुए कर्मोंकी राशिको जला देती है। इस समय हमारी आपकी आत्मामें जो कर्मबंध पडे हुए हैं, ये किस समय पड गए होंगे ? कौन अनुमान कर सकता है ? १०० साल पहिले पड गये होंगे ? हजार वर्ष पहिले ये कर्म बंध गए होंगे ? करोड़ों साल पहिले ये कर्म बंध गए होंगे ? अनगिनते वर्षों पहिले, लाखों कोडाकोडी सागरों वर्ष पहिले ये कर्म बंध गए होंगे। ऐसे इस सचित कर्मों की राशिको जलानेमें समर्थ यह तत्वज्ञानकी कणिका है। कौनसे तत्वका ध्यान ? निज शुद्ध आत्मतत्वका ध्यान। यह अपने स्वरूपसे ज्ञानमात्र है, यह स्वयं अपने आपकी सत्ताके कारण जिस स्वरूप वाला है केवल उसका ध्यान उसमें करना है। फिर परद्रव्योंको, परभावोंको ऐसे शुद्ध आत्मतत्वके ध्यानरूपी अग्निकी कणिका अन्तर्मुहूर्तमें ही चिरसचित कर्मोंको जला देती है।

अग्नि कणिका एक महावायुके द्वारा प्रज्ज्वलित की जाती है। वह

कौनसी वायु है ? जो समस्त संकल्प विकल्पजालोंकी त्यागरूपी महावायु है। ध्यान बढता है तो विकल्पजालोंका त्याग करके बढता है। जब ज्ञान सच्चा आयगा तो एक भी विपत्ति न आयगी। शायद कभी हजारोंका टोटा पड जाय तो भी विपत्ति न नजर आयेगी। शायद कभी किसी इष्टका वियोग हो जाए तो भी विपत्ति न नजर आयगी। इस ज्ञानकी बड़ी महिमा है। यह ज्ञान ही सुख एवं शांतिका कारण है। तो यह ज्ञान कैसे बढ़े ? समस्त सकल्पविकल्पजालोंको त्यागरूपी महावायुके चलाने से ये ध्यान की, ज्ञानकी ज्वाला बढती है।

देखो तो भैया ! ये विकल्पजाल किस किस किस्मके हैं ? मुनिराज भी वन गए, फिर भी किसी किसीके विकल्प बने रहते हैं। फिर गृहस्थोंके विकल्प तो उनसे भी कई गुणे अधिक हैं। उन मुनिराजको ऋद्धि प्राप्त हो जाए, तो उनके मद हो सकता है। अब आप बतलाओ कि ऊंची तपस्या होकर भी यह विपदा डाइन पीछा नहीं छोड़ती है। उस ऋद्धिका ही बड़ा चमत्कार बताया करते है। कुछ मनोज्ञ हो गए, कुछ अच्छा भोजन मिलने लगा या पूछ होने लगी, उसका गौरव होने लगता है। कुछ समझदार हो गये, कुछ कविता बनाने लगे, कवि कहलाने लगे, उसका भी मद होता है। लोगोंके बीचमें अपनी कुछ महत्ता बताना, इस प्रकारके कुछ घमण्डके भी काम होने लगते है। बड़े बड़े व्याख्यान देने लगे तो लोगोंकी बड़ी बड़ी समस्याओंका और प्रश्नोंका समाधान भी करने लगे तो उससे भी कुछ मद हो जाया करता है। अच्छा राग है, अच्छे शब्द हैं, बोलने लगे, उससे भी गौरव होने लगता है। ऐसे ही कितने ही विकल्पजाल बताए जाये। उन विकल्पजालोंको त्यागरूपी महावायुसे प्रज्वलित शुद्ध आत्मतत्त्वके ध्यानरूपी अग्निकी कणिका अन्तर्मुहूर्तमें ही चिरसञ्चित कर्मराशिको जला देती है।

हम और आप कुछ प्रेक्टिकल काम करें, क्योंकि ससारमें आकर मनुष्यभव पाया, यह बहुत बड़ा जीवन है। प्रेक्टिकल काम क्या है ? इन २४ घटोंमें १० मिनट तो अपनेको सुरक्षित बनाले। ऐसी हिम्मत करें कि जिसका जो होता हो तो हो, उनका उदय उनके साथ है। उन पदार्थोंका परिणमन उनके अनुसार होगा। रात दिन विकल्प आते हैं तो क्या उनसे सिद्धि हो जाती है ? नहीं। जैसा विकल्प होता है, क्या वैसी ही बाहरमें बात बन जाती है ? नहीं बनती होगी ५ मिनटमें, पर विकल्प बनाते हैं २४ घंटे। अरे १० मिनट तो ऐसे सुरक्षित रखो, भगवान्के नाम पर कि इन क्षणोंमें कुछ भी हमें परद्रव्योंका विचार नहीं करना है। अपने आपसे इस

ख्यालको छोड़ दो कि मैं मनुष्य भी हू, मेरा मनुष्यपनेका नाता नहीं है। बन गया हूं मनुष्य। फस गया हू देहमें। पहिले और भी बुरी देहमें फंसा था, अब कुछ अच्छी देहमें फंस गया हू, पर फसा ही हू। मैं मनुष्य नहीं हू। अपनेको मनुष्यपनेसे मना करके स्वरक्षामें अपने १० मिनट तो गुजर ही जायें।

भैया! बाहरमें जिस जगह जो है, सो है, रहेंगे, वहा जाकर मिल जायेंगे। पर १० मिनटको तो सबसे उपयोग हटाओ कि कहीं मेरा कुछ नहीं है। मेरा मात्र मैं यह ज्ञानप्रकाश हू, आकाशवत् अमूर्तशरीरसे अलिप्त हू। ऐसे इस चिदानन्द भगवान्‌की सच्चाईके साथ उपासनामें २ मिनट भी तो बीतें, तो वहा वैसा आनन्द होगा, जैसा कि आनन्द भगवान् प्राप्त करते हैं। उस ही जातिका आनन्द प्राप्त होगा, जिस जातिका आनन्द भगवान्‌को मिला करता है, उस ही आनन्दसे, समाधिमें, तत्त्वध्यान में ऐसी सामर्थ्य है कि चिरसंचित कर्म क्षणभरमें ही जल जाते हैं। इस कथनसे शुद्ध आत्माके ध्यानमे सामर्थ्य जानकर, हे भव्यजीव! उस ही शुद्ध आत्मतत्त्वकी निरन्तर भावना करना चाहिए।

भैया! सत्संगसे बढ़कर दुनियामें और कोई आनन्दवर्द्धक प्रसग नहीं है। मोहियोंके सगसे क्या लाभ लूट लोगे? बातें भी कैसे बोली जाती हैं कि जिनका न सिर न पैर। कहीं की बात कहीं ठोक दी। गप्पें ही तो करते हैं। जिन बातोंसे कोई प्रयोजन नहीं कि भाई ऐसी बात बोले बिना हमारा गुजारा ही नहीं होना। ऐसी बातें नहीं बोली जाती हैं। उस गप्प-चक्रमें तो अट्ट सट्ट की बोली बोली जाती है। कोई सचाईकी और सत्पथ की बातें सुनने से उन मोहियोंका दिल नहीं बहलता। अगर एक दूसरेसे बढकर बात टागकर जो गप्प मार सके वही तो बढ़िया गप्प कहलायेगी और वहा ही मौज मिलेगी। ऐसा होता है मोहियोंकी गप्पोंमें। मोहियोंके संग से क्या लूट लिया जाएगा? अन्तमें जिसे कहते हैं, अपना सा मुँह लेकर रोती शक्लसे बस चारपाई पर जाकर सो गए। उन गप्पोंमें तो बज गए ११, सो नींदके मारे रोती हुई शक्लमें जाकर खटिया पर पड़ गये और सो गये। वहा मिला क्या? अपना चित्त गन्दा किया। कर्म बन्ध ही अपना किया। मिला कुछ नही। केवल अपना ही अपना नुक्सान किया।

एक सत्संग ही धन्य है। इसकी महिमा तो सब जगह सुन ली, कहीं अगर थोड़ी कथा भी होती है तो लोग कहते हैं कि सत्संग हो रहा है। कहा जा रहे हो? सत्संगमें जा रहे हैं। कोई बड़ा धार्मिक उत्सव हो तो

उसको भी लोग बोलते हैं कि सत्संगमें जा रहे हैं। उस सत्संगका नाम ही बहुत बड़ा है। तो मोह छोडकर अपनी सद्गोष्ठी बनाओ। सत्संगि बनाकर अपने आत्माको विश्राम देना चाहिए। बुद्धिको विश्राम धर्मकी बात ही दे सकती है। ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्वका ध्यान, सत्सग व ज्ञानार्जन करना चाहिए और गुरुजनोंकी उपासना करनी चाहिए। अब यह निरूपण करते हैं कि हे जीव ! तू समस्त चिंताजालों को छोड कर इस शुद्धस्वरूपको निरन्तर देखो।

मेल्लिवि सयल अवक्खडी जिय विचितउ होइ।
चित्तु णिवेसहि परमपए देउ णिरंजणु जोइ ॥११५॥

इस दोहेमें आचार्य देव बतलाते हैं कि समस्त चिंतावोंको छोड़कर निश्चिंत होकर हे जीव अपने चित्तमे परमपदको लगाकर इस निरजन देहको देखो। समस्त चिंताजालोंको छोड़कर अपने आत्मस्वरूपको देखो। चिंता जाल क्या-क्या हैं ? दु खी होना, भोगोंकी इच्छा करना चिंता ही तो है।

नारद जब सीता से अप्रसन्न हो गए, उस समयका दृश्य देखो कि सीता दर्पणमें अपने सिरका श्रृङ्गार देख रही थी। नारदकी विकराल फोटो उसी समय उस दर्पणमें पड़ी। उस समय नारदके लम्बे-लम्बे बाल बिखरे हुए दर्पणमें झलके थे। जब सीता ने एक विकट मूर्नि उस दर्पणमे देखी तो कुछ डरकर अपना स्थान छोड़कर भीतर घुस गई। नारद तो बड़े पवित्र जीव थे। राजावों के यहा रानियोंके पास भी नारद चले जाते तो राजावो को ऐतराज न होता था। नारद विश्वासी पुरुष थे। नारदने सोचा कि सीता तो हाथ जोड़कर विनयपूर्वक पेश आयगी, मगर वह तो मुँह बनाकर अन्दर भग गई। नारदको बुरा लग गया। नारदने सोचा कि मैं इसका बदला चुकाऊँगा। सो सीता जी की बड़ी सुन्दर कागजपर मूर्नि बनाकर विद्याधर की नगरीमें जाकर भामण्डलके सामने डाल दिया। अब भामण्डल उसे देखकर अधीर हो गया। सीता, भामण्डल सगे भाई बहिन थे। उत्पन्न होते ही देव कृपासे वे बिछुड़ गए थे। उन्हें कुछ पता न था। भामण्डलने आहार छोड़ दिया अथवा बेवकूफी करने लगे। अब मा बापको चिंता हुई। पूछा इस मूर्तिको लाया कौन है ? पता मिला कि नारद लाये हैं। तो अब सीता की खोजके लिए भामण्डल चले कि यह ही मेरी स्त्री बने। पर जब बीच जंगलमे पहुचे, जगहका स्मरण हुआ, उस समय ख्याल हुआ कि अरे सीता तो मेरी बहिन है। फिर क्या था ? सारा मोह कलक दूर हो गया और व्रत व नियम ग्रहण किया।

यहा है क्या ? दु ख होते हैं भोगोंकी इच्छासे। भोगोंकी बात सुन

ली जाये तो उससे भी बेचैनी हो जाती है। अभी कोई बता देवे कि कल इस मोहल्लेमें ऐसा बढ़िया सिनेमा या सर्कस आया है। सुना ही तो है मगर बेचैनी हो गई। कोई बात सुन ली। अभी भोजनकी ही चर्चा छिड़ जाये कोई भोजनकी ही बात बतलाता है कि मैंने तो यह चीज खाई है तो झट मन चलने लगेगा वैसा भोजन करनेको, तो भोगोंकी इच्छा भी बेचैनी कर देती है और अनुभूत भोगोंकी इच्छा तो बेचैनी करती ही है तो ये आकांक्षाएँ ही अपध्यान हैं, ये ही समस्त चिन्ताएँ जड़ हैं। इनको छोड़कर निश्चिन्त होकर हे भव्य जीव अपने चित्तमें परमात्मस्वरूपको स्थिर करो। भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मको अञ्जनसे रहित शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा मात्र परम-आराध्य इस शुद्ध आत्माका ध्यान करो। अपध्यान मत करो।

अपध्यानका लक्षण स्वामी समन्तभद्राचार्यने बतलाया रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कि स्त्री, पुत्र, मित्रोंका द्वेषका रागका बन्धन, छेदन, पीड़ा नुक्सान आदि बातोंका ध्यान किया जाये तो यह सब अपध्यान है। इस अपध्यानका फल तो देखो—स्वयम्भूरमण समुद्रमें जो सबसे अंतिम है, और जितना उसका विस्तार है उतने विस्तारमें असंख्यात समुद्र और असंख्यात द्वीप समा गए। इतने बड़े विस्तार वाले समुद्रमें जो मच्छ रहते हैं वे बड़ी विशाल काया वाले होते हैं। लाखों कोस लम्बे चौड़े वे मच्छ रहते हैं। वे बड़े मच्छ मुँह बाये पड़े रहते हैं और उनके मुखमें हजारों बड़े मच्छ फिरते रहते हैं। वे दिन रात मुँह बाये फैलाये पड़े रहते हैं।

ढाई द्वीपके भीतर भी जो समुद्र हैं उनमें तो दो चार मीलकी लम्बी मछली सुनी गई हैं। अन्तिम समुद्रमें हजारों कोसके लम्बे मच्छ होते हैं। वहां आदमी नहीं बसते हैं, पर कूड़ा करकट इकट्ठा हो जाता है, बड़े-बड़े पेड़ झाड़िया उग जाती है, पर जब वे मच्छ करवट लेते हैं तो सारे झाड़ खत्म हो जाते हैं। ऐसे बड़े मच्छ दिन रात पड़े रहते हैं। हजारों मच्छिया उनके मुखमें आती जाती हैं। कभी २-४ दिनमें अपना मुख दाब लिया और भूख मिटा लिया। बड़े मच्छके कानोंमें या आंखोंमें रहने वाले छोटे मच्छ सब देखते रहते हैं और सोचते रहते हैं कि यह मच्छ बड़ा मूर्ख है। हजारों मच्छिया मुखमें आ जाती हैं, फिर भी नहीं खाता। यदि इसकी जगह पर हम होते तो एकको भी न छोड़ते। ऐसा अपध्यान वे मच्छ करते हैं और वे ७ वे नर्कमें जाते हैं और यह बड़ा मच्छ छठे नर्कमें जाता है।

गृहस्थोंको दो ही काम तो हैं—एक धर्मप्रभावना और एक आजीविका व्यर्थकी यहां वहांकी विडम्बना करना, आलोचना करना— ये सब व्यर्थके काम हैं। इनसे न तो अपनी आजीविका का सम्बन्ध है और न उद्धारका

सम्बन्ध है और न उद्धारका सम्बन्ध है। ऐसे व्यर्थके अपध्यानको छोड़कर हे कल्याणार्थी पुरुषो ! परम आराध्य इस निज शुद्ध आत्माका ध्यान करो।

निज शुद्ध आत्मतत्त्वका ध्यान किए जाने पर जो सुख उत्पन्न होता है उस सुखका अब तीन दोहों में वर्णन करते हैं। निज शुद्ध आत्माके लिए शिव विशेषण दिया है। कोई कहे कि शिवकी उपासना करो, उसका अर्थ है कि जो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है उसकी उपासना करो।

जो सिवदंसणि परमसुहु पावहि झाणु करतु।
त सुहु भुवणु वि अत्थि णवि मेल्लिवि देउ अणतु ॥११६॥

ध्यान करते हुए शुद्ध आत्मतत्त्वके दर्शनमें जो परम सुख प्राप्त होता है व जिस परमसुखको हे भव्य तुम प्राप्त करते हो, वह सुख तीन लोकोंमें भी इस परमात्मदेवको छोडकर अन्यत्र कहीं न मिलेगा। यहा परमात्माको अनन्त कहा है। अनन्तका अर्थ है अविनाशी। जिसका कभी विनाश न हो उसे कहते हैं अनन्त। वह अनन्त हुआ परमात्मा। शिव शब्दके द्वारा वाच्य क्या है ? निज शुद्ध आत्मा। जरा अपना उपयोग अपने भीतर ले जाकर कुछ निहारो तो। किसी भी परद्रव्यकी पकड न करो। केवल अपनी सत्ता मात्र ज्ञानस्वरूपका भाव बनाओ और अपने को एक जाननस्वरूप मैं हू, ज्ञान ज्योतिमात्र हूं, प्रतिभासमात्र हू–ऐसी बार-बार अपनी भावना करो और इस भावनामे ज्ञानका जो स्वरूप है उस रूप अपनेको ढाललें, ऐसी स्थितिमे जो दर्शन होता है वह है शिवदर्शन। शिव मायने मोक्ष, शिव मायने कल्याण, कल्याणरूप दर्शन है। शिव शब्दसे यह विशुद्ध ज्ञानस्वभाव वाला निज शुद्धआत्मा जानना चाहिए। उसके दर्शनसे एक परमसुख तुम प्राप्त करते हो।

परम सुख कैसा है कि निज शुद्धआत्माकी भावनासे उत्पन्न हुए रागद्वेपरहित परम आल्हादरूप है, अनाकुल है, उस सुखको तुम प्राप्त कर लोगे। एतदर्थ क्या करना है ? वीतराग निर्विकल्प तीन गुप्तिरूप समाधिको करना है। त्रिगुप्ति है मनको वशमें करना, वचनोको वशमें करना और कायको वशमें करना। कायसे यथा तथा चेष्टा न करो, दुर्वचन न बोलो और मनमें किसीका बुरा चिंतन न करो। ऐसी तीन गुप्तियोंसे सहित जो समतापरिणाम है, उस समतापरिणामको करता हुआ यह जीव एक अलौकिक आनन्दको प्राप्त करता है। जैसे आप लोग सुख पानेके लिए दसों बातें करते हो ना, दुकानमे भी बैठना, मित्रगोष्ठीमे अपना यश लूटना, जैसे दसों काम करते हो तो एक ग्यारहवां काम और करलो, कुछ हर्ज नहीं होगा। रात दिनके समयमे किसी भी क्षण किसी भी परका न ध्यान करके विश्रामसे बैठ जावो। किसी भी अन्यका न ख्याल करो, ऐसी स्थितिमे जो

ज्ञानस्वरूपका अनुभव न होगा उससे इस जीवको अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा। थोड़े समयकी ही तो बात है। अपने इस थोड़े समयमें निर्विकल्पता से आनन्द लेनेके लिए अपने आत्मस्वरूपकी धुनि बनानी पड़ेगी, तब कहीं एक आध मिनटके लिए जो आत्मानुभवका सुख है वह प्राप्त हो सकता है। ऐसे सुखको कहां तुम पावोगे? एक परमात्मामें पावोगे, जो शिव शब्दोंके द्वारा वाच्य है, ऐसा जो परमात्मपदार्थ है उसको छोड़कर तुम तीनों लोकों में किसी भी जगह सुखको नहीं प्राप्त कर सकते हो।

यहां इसका यह अर्थ है। शिव शब्दके द्वारा वाच्य जो यह निज परमात्मा है, उसे ही राग द्वेष मोहके त्याग पूर्वक ध्यान किया जाय तो अनाकुलतारूप परम सुख प्राप्त होता है। अन्य कोई भी शिव नामका भिन्न पुरुष नहीं है जो मुझे सुख दे। अपने आपको शुद्ध ज्ञानरूप अनुभव करनेसे ही अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है। इस जीवको आनन्द हो, सुख हो, दुःख हो— ये तीनों ही बातें इस पर निर्भर है कि वे अपनेको कैसा जानें कि सुख हो जाय, अपनेको कैसा जानें कि दुःख हो जाय और अपने को कैसा जानें कि आनन्द हो जाय। केवल अपने आपको जाननेकी विधि पर ही सुख दुःख और आनन्द निर्भर है। जब कभी हम और आप दुःखी होते हैं उस समय अपनेको कैसा अनुभव करते हैं? यही अनुभव करते हैं कि मैं मनुष्य हूं, मैं अमुकचंद हूं, मैं अमुक प्रकारका हूं इत्यादि किसी पर-रूप अपनेको मानते हैं, हजारों घटनाएँ ऐसी अपने पर लगाकर अपने को दुःखी अनुभव कर सकते हैं। इसी प्रकार हजारों ही घटनाएँ बनाकर अपने को सुखरूप अनुभव कर सकते हैं। हमारा सुख दुःख हमारे भावों पर ही अवलम्बित है।

इस प्रकार इस दोहेमें यह बात कही गई कि जो पुरुष अपने ज्ञान दर्शनरूप आत्माको इस ही रूपसे देखता है वह अलौकिक आनन्दको प्राप्त करता है। यह आत्मा ही शिवमय है। अब इस ही बातको अपने शुद्धआत्मा का ध्यान किए जाने पर कैसा सुख प्राप्त होता है? इस दोहेमें कहते हैं।

ज मुणि लहइ अणंत सुहु णिय अप्पा झायंतु।
त सुहु इंदुविणवि लहइ देविहिं कोडि रमंतु ॥११७॥

अपने आत्माका ध्यान करते हुए जिस आनन्त सुखको प्राप्त होते हैं उस सुखको इन्द्र भी करोड़ों देवियोंके साथ रमता हुआ भी नहीं प्राप्त कर सकता है। मुनिगण जो अपने आपके शुद्ध स्वरूपका ध्यान करते हैं, बाह्य और आभ्यतर परिग्रहसे रहित, निज शुद्ध आत्मतत्वकी भावनासे उत्पन्न वीतराग परम आनन्द सहित मुनि जिस सुखको प्राप्त करते हैं उस

सुखको देवेन्द्रादिक भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। यह आत्मा स्वभावसे आनन्दमय है। शुद्ध ज्ञानमात्र ऐसे ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप अपने आपको समझ जाय, और सब बातोंको मना कर दिया जाय, मैं आगरावासी हू, मैं मनुष्य हू, मैं अमुक जातिका हू, अमुक पोजीशनका हू, पण्डित हू, मूर्ख हू, इन सब बातोंको मना कर दिया जाए, मात्र अपनेको ज्ञानस्वरूप ही देखा जाय तो ऐसी स्थितिमें जो सुख प्राप्त होता है वह सुख किसी भी जीव को नहीं है। जो इन्द्र हजारों देवियोंके साथ रमण करता हो, उस इन्द्रको भी उतना सुख नहीं प्राप्त होता।

इन्द्रके हजारों क्या, करोड़ों देविया व खरबों उसके जीवनमें हो जाती हैं, क्योंकि इन्द्रकी आयु होती है बड़ी और देवियोंकी आयु होती है थोड़ी। जैसे मानों सोलहवें स्वर्गके इन्द्र की आयु होती है २२ सागर और देवियोंकी आयु होती है ज्यादासे ज्यादा ५५ पल्य। एक सागरमें १० कोड़ाकोड़ी पल्य होते हैं। एक करोड़ पल्यमें एक करोड़ पल्यका गुणा किया जाय उसे कहते हैं एक कोड़ाकोड़ी। ऐसे १० कोड़ाकोड़ी पल्य एक सागरमें होते हैं। और २२ सागरकी आयुमें हिसाब लगा लो तो एक इन्द्र के करोड़ों देविया क्या, खरबों, नीलों हो जायेगी। हजारों तो रहती ही हैं, देवियां तो जल्दी मर जाती हैं और जल्दी ही उनकी एवजमें, टाइम ज्यादा नहीं लगता नई देविया मिल जाती हैं। तो इन्द्रके सब आयुमें करोड़ों देविया हो जाती हैं। उन करोड़ों देवियोंके साथ रमण करने वाले इन्द्रको भी उतना सुख नहीं प्राप्त होता है जितना कि सुख शुद्ध आत्माके ध्यान करने वाले पुरुषको प्राप्त होता है। ये मुनि बाह्य और आभ्यतर परिग्रहसे रहित हैं। इनके निज शुद्ध आत्मतत्वकी भावना बहुत रहती है। उनके वीतराग परम आनन्द प्रकट होता है। उस आनन्दसहित ये मुनि जिस सुखको प्राप्त करते हैं, उस सुखको देवेन्द्रादिक भी नहीं प्राप्त कर सकते।

कहा भी है किसी ग्रन्थमें कि यह सारा जगत् महान् मोहरूपी अग्नि से जल रहा है, सर्वत्र देखो मोहका ही प्रसार है। ऐसे समयमें जब कि सारा जगत् मोहरूप अग्निसे जल रहा हो, उस जगत्में विषय और परिग्रहों से विमुक्त हुए तपस्वीजन सुखी ही रहा करते हैं। विषयों की प्रीतिमें यह मोहरूपी अग्नि दुःख ज्वालासे जला रही है, और, विषयोंका संग हट जाय तो ये तपस्वीजन सुखपूर्वक ही रहें। सुखी होनेका एक ही उपाय है कि अपनेको नानारूप अनुभव न करो, अपनेको एक ज्ञानमात्र अनुभव करो।

इस लोकमें सुखी कौन है? सुखी वे ऋषिराज हैं जिन्होंने बाह्य और आभ्यतर परिग्रहका त्याग कर दिया और निरन्तर निज शुद्ध आत्मतत्वकी

भावनामें रहते हैं। सो इस शुद्ध भावनासे उत्पन्न हुए वीतराग परमानन्द सहित जो मुनि हैं, वे उत्तम सुखको प्राप्त करते हैं। जैसा आनन्द ये मुनिराज प्राप्त करते हैं उस आनन्दको देवेन्द्रादिक भी नहीं प्राप्त कर सकते। एक इन्द्रकी जिन्दगीमें उसकी करोड़ों देवियां हो जाती हैं हजारों देवियां तो उसकी जिन्दगीमें ही रहती हैं और देवियां गुजर गईं तो ज्यादासे ज्यादा एक दिन बादमें दूसरी देवियोंका जन्म हो जाता है और अन्तर्मुहूर्त में ही जवान हो जाती हैं, इन्द्रकी आयु है अधिकसे अधिक २२ सागर और देवियोंकी आयु होती है अधिकसे अधिक ५५ पल्य। एक इन्द्रके करोड़ों देवियोंका सग हो जाता है। ऐसी देवियोंके साथ रमने वाला इन्द्र भूख प्यास की चिंतासे रहित भी उस सुखको प्राप्त नहीं कर सकता, जिन सुखको शुद्ध आत्माकी भावना करनेवाला मुनि प्राप्त करता है। देखो मोहकी विचित्रता ये तपस्वीजन ही इस मोहरूपी अग्निसे जलने वाले लोकमें विषय प्रसंगों से मुक्त होकर सुखी हुआ करते हैं, उसही सुखके सम्बन्धमें और विशेष कहते हैं।

अप्पा दंसण जिणवरहि ज सुहु होइ अणंतु।
तं सुहु लहइ विराउ जिउ जाणंतउ सिउ सतु ॥११८॥

निज शुद्ध आत्माके दर्शन करनेमें जिनवरों को जो सुख उत्पन्न होता है, छद्मस्थ अवस्थामें उन्हें जो सुख उत्पन्न होता है, जिस सुखको वीतराग भावमें परिणत जीव शिव शांतिका अनुभव न करता हुआ जिस सुखको प्राप्त करता है वह सुख तीन लोकोंमें किसी भी जगह नहीं है। सबसे बड़ा पुरुषार्थ है अपने जाननस्वरूपका अवलोकन करना और उसमें ही संतुष्ट रहना। जो अपने घरमें सुख सतोषपूर्वक नहीं रह सकता वह दूसरेके घरमें सुख और सतोपका उपाय क्या पा सकेगा? यह वीतरागी जीव महान् सुखको प्राप्त करता है, वीतराग बननेका उपाय क्या है कि वीतरागकी भावना बनाएँ। हमें मोक्ष पाना है तो मोक्षकी स्थिति होती है। उस स्थिति की भावना बनाएँ तो हम तभी उस स्थितिको पा सकते हैं। बनना तो चाहें हम बडे और बडे बननेके उपायको करें, नहीं तो बड़ा कैसे बना जा सकता है? वीतराग भावना परिणत यह जीव शिव शात निज आत्मस्वभावको जानता हुआ यह निज शुद्ध आत्मस्वभाव ही शिवस्वरूप है, शांत है, रागादिक भावोंसे रहित है। दीक्षाकालमें शिव शब्द वाच्य निज शुद्ध आत्माके अनुभवनमें जो सुख, उन जिनवरोंको होता है उस शुद्ध आत्माके अनुभवमें जो सुख होता है, उन मुनिराजोंको वीतराग निर्विकल्प समाधि में जो रत हैं उस सुखको वैसा ही जो बने वह प्राप्त कर सकता है।

भैया ! आप सुखकी छटनी करलो कि कौनसा सुख अच्छा है। भोजनमे तो छटनी वड़ी जल्दी कर लेते हैं, आज मू गकी पकौड़ी वने और पापड़ वनें। रूखा सूखा भोजन पसद नहीं आया। वड़ी छटनी कर लेते हैं। तव अनुमान लगा लेते हैं कि इस इसके मिला लेनेसे ज्यादा स्वाद है। कहीं भूल जाये कि कौनसी चीज किसके साथ खाना है तो हमारी मातायें दया करके वता देती हैं कि महाराज, इसको इसके साथ खावो तो अच्छा लगेगा। तो भोजनमें कैसी छटनी हो जाती है ? अव जरा इस विश्वमे दृष्टि पसार कर सुखकी छटनी करो कि कौनसा सुख पाने योग्य है ? इस इन्द्रियसुखमें कोई सा भी सुख पसन्द नहीं है।

यह सुख क्या है ? जैसे किसीके फोड़ा निकला, पक गया, तो उस पर मलहमपट्टी लगानी पड़ती है और फोड़ा ही किसीके न हो और फिर भी वम्बईका मलहम कपड़े पर बाधकर तपाकर कोई बाधे तो दुनिया उसे मूर्ख कहेंगी। कोई फोड़ा फुन्सी हो तो मलहमपट्टी करे और कुछ नहीं है तो मलहमपट्टी करना पागलपन है।

बुखार आ रहा है जाड़ा देकर तो उसे रजाइयां ओढाई जायेगी, ताकि पसीना निकले और जिसके बुखार ही न हो और १०-२० रजाइया ओढा दी जायें तो उसे कौन बुद्धिमान कहेगा ? बुखार हो तो रजाइयां ओढाकर पसीना निकलवा लें। फोड़ा फुन्सी हो तो मलहमपट्टी करा लें, पर निरोग हो तो मलहमपट्टी की क्या आवश्यता है ? इसी प्रकार जिन जीवोंको चाहका रोग लगा है तो उस रोगको मिटानेके लिए ये विषय-भोग प्रतिकार करते हैं, पर जिन्हें विषयोंका रोग ही नहीं लगा हैं, वे निर्विषय हैं, निर्विकल्प हैं। उन्हें फिर विषयों की क्या आवश्यकता है ? ये विषय वेदनाके प्रतिकार हैं, तिस पर भी वेदनाका प्रतिकार करें ही, यह आवश्यक नहीं है।

इन्द्रियजन्य विषयोंका कोई सुख उपादेय नहीं है। हम वहुत वढिया वढ़िया रूप वाले पदार्थोंको देखा करें। तो क्या कुछ लाभ मिलेगा ? ऐसा नहीं है। रसीले पदार्थोंको खाया करें तो लाभ मिलेगा, सो वात नहीं है। आजकल असंजके दिन हैं, सो खाते तो हम आप भर पेट मनमाना है, सो बुखार, जुखाम, खांसी होगे ही। दोष देते हैं ऋतु वदलनेका। अरे ! चाहे जो वदले, पर सयमसे अल्प भोजन हो, तो वीमारीकी क्या आवश्यकता है ? तो ये इन्द्रियजन्य जितने पदार्थ हैं, ये विषयोंकी वेदनाके प्रतिकार हैं, सुखरूप नहीं हैं। सुख तो ज्ञानी पुरुष ही कर सकते हैं।

भैया ! छटनी कर रहे हैं ना ? तो मनका सुख अच्छा होगा। लोगों

में हमारी इज्जत बढ़ जाय, पोजीशन बढ़ जाय, लोग आगे बैठनेको बुलायें, लोगोंमें हमारी महिमा फैले। अच्छा लो फैला लो खूब। कोई पुरुष मरता हो और उसका जयकारा करनेके लिए १० आदमी बैठाल दें तो उन १० आदमियोंके जयकारा बोलने से भला होगा या मरने वाला खुद अपने परिणाम निर्मल बनाए, तो भला होगा? खुद ही के सच्चा उपाय किए जाने पर ही सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है। रोज पूजा किसलिए करना चाहिए? इसलिए कि हमारे मोहमें कुछ फर्क आ जाए। निर्मोही वीर प्रभुका गुणानुवाद इसलिए करते हैं कि हमारे मोहमे कुछ अन्तर आ जाए। तीर्थयात्रा किसलिए करते हैं कि हमारे मोहमें फर्क आ जाए। पर मोह रखते हुए ही पूजा करें और मोह रखते हुए ही यात्रा करें, तो वहा मोहके छूटनेका काम क्या बन सकता है? नहीं। और मोह न छूटेगा तो जीव को शांति नहीं मिल सकती। कोटि यत्न करलो, पर मोह छोडे बिना शान्ति न मिलेगी। मोहसे और आपत्तियां लग रही हैं, पर यह जीव मोह छोड़ने में आपत्ति समझता है। वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रत जीव ही भगवान्‌के जैसे सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

अब यह बतला रहे हैं कि काम क्रोध, मान, माया, लोभ आदिका परिहार करके शिव शब्द द्वारा वाच्य यह परमात्मा देखा जाता है। ऐसी बात अपने मन मे धरकर इस दोहे को आचार्य देव इस प्रकार कहते हैं—

जोइय णियमणि णिम्मलए पर दीसइ सिउ सतु।
अबरि णिम्मलि घणरहिए भाणु जि जेम फुरंस ॥११९॥

हे योगी! निर्मल अपने चित्तमें शिव शान्त रागादि रहित निज परमात्मा नियमसे दिखता है। निर्मल चित्त हो तो वहां परमात्मा अवश्य दिखता है और निर्मल चित्त न हो तो वहा परमात्माको कितना ही ढूंढो, पर वह दीखेगा नहीं। जैसे बादल रहित निर्मल आकाशमें सूर्य प्रकाशमान् होता है और बादलरहित आकाश न हो, मेघछाया हो तो उसका प्रकाश फिर नहीं फैल सकता। मेघोंकी छटाका आरोप विघटित हो जाए तो निर्मल आकाशका यह सूर्य प्रकाशमान् होता है। उस ही प्रकार शुद्धआत्मा के अनुभवके विरुद्ध काम, क्रोधादिक विकल्परूपी मेघोंका नाश होकर निर्मल चित्तरूपी आकाशमें केवलज्ञानादि अनन्तगुणोंसे फैला हुआ यह निज शुद्ध आत्मरूपी सूर्य प्रकाशको करता है। सारा फैसला तो मोह और निर्मोहकी बातका है। मोह है तो लटोरे घटोरे खचोरे बनना ही पड़ेगा और मोह नहीं है तो बेड़ा पार हो जायगा।

भैया ! सत्य बात जानकर अपने भीतरमे ऐसी हिम्मत तैयार करना है, किसीको दिखाना नहीं है, पर अपने आपमें ऐसी हिम्मत बनाना है कि यह ज्ञान स्वय प्रतिभासित रहे कि मेरा मात्र मैं हूं। मेरा अन्य कुछ भी नहीं है। मै अकिञ्चन्य हू, मेरा कहीं कुछ नहीं है।

किन्तु अज्ञानी पुरुष ऐसा चिंतन करने के बजाय ऐसा चिंतन करता है कि यदि घरमे खुदकी स्त्री और उसकी बडी जेठानीका झगडा हो जाए नो मामला जाने या न जाने अपनी स्त्रीका पक्ष लेने लग जाए। कहां तो न्याय नीति बर्तना चाहिए था, मोह छोडना चाहिए था और कहां स्त्रीका पक्ष लेने लगे। कभी पुत्रका पक्ष ले लिया और कभी मां का पक्ष ले लिया। पक्षकी बात हर जगह रखता है। अपना लड़का भी यदि खोटी चाल चलता है तो उसकी उपेक्षा करके उसे दण्ड दे, यह तो नहीं करता, किन्तु दूसरे पुरुषको बुरा कहे और अपने लड़के का पक्ष ले, यह तो न्यायमे नहीं लिखा है। यथार्थस्वरूपको जानो और सत्यका बर्ताव करो। यदि काम, क्रोधादिक विकल्प मेघ नष्ट हो तो इस आत्माका प्रकाश बढ़ेगा। इस जीवके ये द ही तो शत्रु हैं — मोह, काम, क्रोध, मान, माया और लोभ। इन शत्रुओंके जीवित रहते कुछ चैन मान सकें, शान्तिसे रह सकें यह नहीं हो सकता है। इसलिए भगवान् की भक्ति करना बताया है कि कुछ देर तो भगवान्के गुणो में चित्त दो।

दर्शन करनेकी विधि यह है कि देखो तो मूर्ति पर चित्त ले जावो वहा जिनकी मूर्ति बनी है। वीर प्रभुकी मूर्ति है तो उस वीरके जमानेको सब आकार प्रकारसे सोचने लगो। समवशरणमें विराजमान वीरप्रभु कैसा उपदेश कर रहे है, यह सब चित्रण अपने मनमें उतारो तो समझो कि वीरप्रभुकी उपासना की। जिस मूर्तिके दर्शन करते हैं उसके गुणोंका ध्यान नहीं करते तो क्या होता है दर्शन करनेसे। अपने यहा यह प्रथा बढ चली कि धोती पहिने हुए पूजा करने आये और जितने भगवान् हुए सबके पैर पड़ लिये और तनिक बडेसे भगवान् हुए तो पैर दाब लिये। छोटेके तो दाबते नहीं बनते, पर यह दर्शन, भक्ति और पूजाके विरुद्ध बात है। जैसे घरकी चीजें समझ लो कि झट गए और खम्भेसे टिक गए, खम्भेको पकड़ लिया और चाहे चीजको दाब दिया, ऐसे ही निर्भय होकर जब चाहें पैर छूते रहे तो भक्तिमें कमी आ जायगी। अच्छा क्यो दाब रहे भगवान्के पैर ? सो बतलावो क्या इस मूर्तिके पैर थक गए सो दाब रहे हो। तो जैसे धन पानेके लिए धनिककी खुशामद करते हैं, पैर दाबते हैं, ऐसे ही मूर्तिके पैर दावे तो मिलेगा कुछ नहीं। मूर्तिके पैर दाबनेकी अपेक्षा गावका कोई

कजूस सेठ हो उसके पैर दावो तो कुछ न कुछ तो मिल ही जायेगा, पर इस मूर्तिके पर दावे तो अज्ञानकृत कर्मबन्ध हो जायेगा, पर उस कजूससे तो पैसा मिलेगा।

शुद्ध होकर दूर खडे होकर प्रभुपूजादि करो। प्रभुको कोई छू भी सका है। प्रभुकी स्थापना ही तो यह है। यह ध्यान रखिये कि मूर्तिका अभिषेक करना पडता है। यदि अभिषेक न करें तो मूर्तिकी मुद्रा बिगड जायेगी, मुद्रा मलिन हो जायेगी, फिर दर्शनार्थियोंको दर्शनमें मन न लगेगा। इसलिए अभिषेक करना पडता है। यदि यह मूर्तिमुद्रा बिना अभिषेक किए चमकदार बनी रहती तो दूरसे ही पूजा करके काम बना लेते। सो ऐसा होता नहीं। इसलिए अभिषेककी विधि बनायी है। उसमें भी प्रभुकी मूर्ति पर छन्ना रखकर अभिषेक न करें। छन्ना रखकर अभिषेक करनेकी बात दूर जाने दो, अकलक निकलक ने एक डोरा डालकर लांघ दिया था, सो उन्हें उसका दोष नहीं लगा था। यह सोच लिया था कि परिग्रहसहित दिगम्बर मूर्ति नहीं होती है। उसमे अकलक निकलक का कोई चारा न था। बड़ा कठिन समय था। उस समयको ऐसा ही करके टाला था, और फिर सब मूर्तियोको एक-एक करके पहिले पैर छूले और फिर अतमें एक बार अपने माथे में लगा ले तो वह तो हमे भक्त नहीं मालूम देता और बहुतसी मूर्तियां रखी हैं, सो बारबार पैर छूनेसे समय ज्यादा लगता है तो एक बार सबके पैर छू ले और अतमें एक बार माथेमें लगा ले तो यह भी हमें भक्ति नहीं मालूम होती है। मूर्ति तो दर्शनके लिए है और जिसके दर्शन किए हैं शांतिनाथ, महावीर आदिके उनके जो गुण समझ सकें हैं वहा दृष्टि ले जायें, यह है भगवान् की भक्ति, भगवान्का पूजन। यह आदत बनी हो तो ख्याल करके धीरे-धीरे पुरानी आदतको मिटानेकी कोशिश करो। पर मुद्रासे तो बहुत दूर रहकर ही गुणगान करना चाहिए, उसमें ही भक्ति है।

जैसे किसी कलेक्टरके पास जावो तो झट उसकी कुर्सी पर चढकर पैर दावने लगो तो बात न बनेगी। दूर रहकर ही काम करो। प्रभुको तो कोई छू भी नहीं सकता। सो दूर रहकर ही दर्शन करना चाहिए। अभिषेक के समय मूर्तिका छूना ठीक है और शेष समय दूर रहकर ही मूर्तिको निहार कर उनके गुणोंका स्मरण करके अपने आपमें भक्ति बढाना चाहिए। सो सबसे बड़ी भक्ति तो यह है कि भगवान्ने जो हुक्म दिया है उसका पालन करे। भगवान्का हुक्म यह है कि तुम मोह कम कर दो, मान, माया, लोभ से दूर रहो। उनके बताये हुए कामको हम करेंगे तो हम भगवान्के निकट भक्त बनेगे। केवल पूजा, अभिषेक दर्शन या झाझ मजीरा बजाने आदिसे

हम भगवान्के भक्त नहीं कहे जा सकते। यह भी व्यवहारसे करना है, करना चाहिए। पर इनका जो उपदेश है उसको चित्तमें उतारें तो हम भक्त कहलाये। पिता जी को भोजन तो अच्छा करा दे और बात उनकी एक भी न मानें और उल्टी दो बातें सुना दे तो हो गये पिताके भक्त क्या? नहीं। इसी तरह भगवानको हम बहुत कुछ चढादें और उनकी बात एक भी न माने और मनसे दो बातें उनको सुना दें, तुम्हें बैठना हो तो बैठो, हम तो घरमें जाकर मौज करेंगे। तो वह भगवान्की भक्ति नहीं हुई। सो भगवान्के गुणोंमें चित्त हो तो उससे जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख बडे इन्द्रादिकोंको भी नहीं प्राप्त हो सकता।

अब यह बतला रहे हैं कि जैसे मलिन दर्पणमें रूप नहीं दिख सकता है, इसी प्रकार रागादिक परिणामोंसे मलिन चित्तमें शुद्ध आत्माका स्वरूप नहीं दिख सकता।

रायँ रंगिएँ हियवडए देउण दीसइ सतु।
दप्पणि मइलए विंवु जिम एहउ जाणि णिभंति ॥१२०॥

जिनका हृदय रागसे रंजित है अथवा जो हृदय रागसे रंगा हुआ है उस हृदयमें देव नहीं दिखता। कैसा है वह देव? वह देव शांत व रागादिक रहित है। उसका दृष्टांत दिया गया है कि जैसे मलिनदर्पणमें बिम्ब नहीं दिख सकता है, ऐसे हम निर्भ्रान्त होकर तत्त्वस्वरूपको जानें। यह तो रोज दिखनेमें आता है कि मलिनदर्पणमें अपना मुख कैसे देख सकते हैं? दर्पण पर जरासी तेलकी चिकनाई ही लग रही हो तो कुछ भी उसमें नहीं दिखता है। इसी तरह यह उपयोग है दर्पणकी तरह स्वच्छ निर्मल, यदि इस निर्मल उपयोगमें रागादिकका मल आजाय तो भगवान् नहीं दिख सकता है। अथवा जिस प्रकार मेघपटल करके आच्छादित प्रकाशित सूर्यकी किरणें नहीं दिख सकतीं, इसी प्रकार कामक्रोधादिक विकल्परूपी मेघोंसे ढका हुआ यह अपूर्व सूर्य दिख नहीं सकता।

अभी यहीं पर हो किसी के विरोधीसे आप स्नेह लगायें तो उसका प्रेम कम हो जायेगा तो यह तो भगवान् है, परमात्मतत्त्व है, उसके विरोधी है, काम क्रोधादि कषाय तो यदि यह विरोधियोंसे अपनी मित्रता बढ़ाये तो उस उपयोगमें परमात्मा नहीं दिख सकता है और जिस उपयोग में परमात्मा के दर्शन नहीं हैं; पुत्र, मित्र, परिवार आदिका ही जहा लगाव है, आत्माके उद्धारका वहां कोई अवसर नहीं है। ये लोग खुद असहाय हैं, पापका उदय आ जाये तो ये विह्वल हो जायेंगे। तो जो विह्वल हो जाये, जिसके पापका उदय आ सकता है। ऐसे जीवोंसे हम क्या आशा रखें कि ये मेरे शरण हो

जायेंगे।

भैया ! सूर्यके नीचे मेघपटल आ भी जायें तो भी मेघपटलके ऊपर ऊपर सूर्यका प्रकाश रहता है ना, मेघोंके नीचे सूर्यका प्रकाश न रहेगा, पर यह आत्मा केवल ज्ञानावरणरूपी मेघोंसे छा जाय तो ऐसा नहीं है कि आत्माके अन्दर केवलज्ञानका प्रकाश भरा पड़ा हो और ऊपरसे कर्मोंने ढक रखा हो— ऐसा यह नहीं है। जैसे कि आकाशमें सूर्य के नीचे मेघ आ जायें तो सूर्य तो पूर्ण बराबर जगमग चमक रहे हैं, उस मेघके ऊपर तो प्रकाश बराबर है ना, मेघोंके नीचे प्रकाश नहीं है, पर यहा रागद्वेषका मल आया तो आत्मामें केवलज्ञान रच भी नहीं प्रकट होता। केवलज्ञानकी शक्ति है आत्मामें, पर केवलज्ञान रंच भी प्रकट नहीं है। तो शक्तिका घात किया है कर्मोंने, प्रकट नहीं होने दिया है। तो जो शुद्ध परमात्मतत्त्व हमारे ऐबों के कारण प्रकट नहीं होता है वह परमात्मतत्त्व ही उपादेय है।

जैसे पहिले औंधा घडा रख दे तो उसके ऊपर दूसरा औंधा ही घड़ा रखा जा सकता है और उसके ऊपर तीसरा घड़ा भी औंधा भी रखा जा सकता है। सीधा घडा उस औंधे घडोंपर नहीं रखा जा सकता है। ऐसे ही सीधा घड़ा रखे तो उसके ऊपर भी सभी सीधे घडे ही रखे जा सकते हैं, औंधा घड़ा उन सीधे घड़ोंके ऊपर नहीं रखा जा सकता है। इसी प्रकार जिसके मूलमे ज्ञानका उदय है, निर्मलता है, उसके जो बात आयेगी वह सही आयेगी, सीधी आयेगी, विपरीत नहीं आ सकती, किन्तु जिसके मूलमें अज्ञान बसा है, उस अज्ञानकी जो भी क्रिया होगी, चेष्टा होगी, विचार होगा, वह सब औंधा होगा, विपरीत होगा, उसके शुद्ध भाव नहीं हो सकते। तभी तो ज्ञानी जीवका गुस्सा भी भला है और अज्ञानी जीवका प्रेम भी बुरा है। अज्ञानीके प्रेमसे धोखा और दगा हो सकती है, पर ज्ञानीके प्रेमसे धोखा और दगा नहीं हो सकती है। और लोगोंमें तो इतनी बात मानते हैं कि किसी ज्ञानी महापुरुषके द्वारा या भगवान्के स्वरूप द्वारा किसीकी मौत हो जाए तो उसका कल्याण होगा— ऐसा मानते हैं। यदि ज्ञानी पुरुष किसी पर नाराज भी हो, तो उसमें हितका मर्म हुआ करता है और अज्ञानी पुरुष किसी पर प्रसन्न भी हो सकता हो तो उसके भीतर अहित ही घुसा हुआ है।

अज्ञान बनता कैसे है ? विभावपरिणमनकी अपनायत से। बस इसी कारण क्रोध, मान, माया और लोभकी तीव्रतामें क्लेश बढ़ते चले जाते हैं। जिसमे मोह है, वह अज्ञानी है। इस अज्ञानमें रखा कुछ नहीं है, किन्तु मानते हैं कि यही मेरा सर्वस्व है। कुछ थोड़ेसे परपदार्थोंको मान लिया कि

ो ही मेरे सर्वस्व हैं। अन्य दूसरे जीवोंकी कुछ वैल्यू नहीं करते। ये हमारे ाव कुछ हैं, हां हैं तो सही तुम्हारे, पर ये तुम्हारी दुर्गतिके लिए ही हैं, इस कारका अर्थ लगाओ।

भैया! ससारमें भ्रमाने के लिए, कष्टमें फसानेके लिए जो कुछ हैं, तो ये मोही जीव ही हैं। इसका अर्थ किया है। मोहके मायने दो भिन्न भिन्न पदार्थ है, उनमें सम्बन्धका भ्रम करना सो मोह है। मोह मिटाना सरल है, पर राग मिटाना सरल नहीं है। जैसे पेड़की जड़ उखाड़ देना सरल है, पर डाली और पत्तोंको जल्दी ही सुखा कर इस प्रकारका बना देना कठिन है। पेड़की जड़को २ या ४ मनुष्य मिलकर कुल्हाडीसे गिरादें, जड़ उखड़ जायगी, मगर उस पेड़ के पत्त अभी ही हरे न रहें, सूख जायें, यह कोई नहीं कर सकता है। तो दस या बीस दिनमें सूखेंगे। मगर जड़के मिटा देनेमें समय नहीं लगता। तो मोहका मिटाना सरल है, पर रागका मिटाना उतना अपने आधीन बात नहीं है। कारण यह है कि मोह मिटता है ज्ञान से और राग मिटता है ज्ञानाभ्याससे तथा अपने समयसे। ज्ञान होने पर भी राग रहता है, किन्तु मोह नहीं रह सकता है।

मोह क्या है कि दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं और उनमें एकको दूसरे का स्वामी मान लेना, इस मान्यताका नाम मोह है। सो जैसे ही वस्तुके स्वरूपका अवगम होता है, यथार्थज्ञान होता है वैसे ही मोह मिट जाता है। तो मोह मिटानेका यही काम बनालें तो समझो कि सदाके लिए दु ख दूर कर लिया। जैसे किसी चिढने वाले बच्चेको चिढाने वाले दूसरे लड़के खडे हो जाते हैं इसी तरह रुलने वाले इन जीवोंको रुलानेके कारण दसों खडे हो जाते हैं, इन मित्रोंमें और कुटुम्बियोंमें तुम्हारे हितकी बात कोई न सोचेगा। वहा तो पर्यायबुद्धि लगी है कि धन बढना चाहिए, गहने बढने चाहियें, इज्जत बढ़नी चाहिए, नौकर चाकर बढने चाहियें, आरामसे रहें। पर आराम है कहां? शरीरसे खूब काम करे और ज्ञान सही हो तो आराम उसे है। और शरीरसे बड़ा आराम भोगे और ज्ञान है उल्टा तो वहा क्लेश हैं। अभी दो आदमी सामने कोई गुपचुप बात कर रहे हों और आपको कहीं यह भ्रम हो जाय कि ये मेरे ही बारेमें बात कर रहें हैं, हमारी ही तरफ हाथ हिलाते हैं, मु ह करते हैं, ऐसा भ्रम करके ही उसका दु ख बढ गया। तो यह ही खुद दु खका करने वाला है। वे दोनों तो बेचारे उनके अन्दर जो भाव है उनके अनुसार बातें कर रहे हैं। बहा इसका किसीने क्या बिगाड़ किया, पर यह अपनेमें भ्रम लगाकर स्वय दु खी होता है। सो दूसरा रुलाने वाला कोई नहीं है। मैं स्वय अज्ञानसे, भ्रमसे दुखी होता हूं।

दीवालीके दिन थे। एक कथानक है पुताई हो रही थी। तो दीवाली में गेरुवे रंगकी पुताई सस्ती पड़ती है ना तो घरके बड़े अधबटवा थे सो उनकी यह आदत थी कि सुबह उठें और लोटा लेकर अधरेमें ही २-३ फर्लांग शौचके लिए जावें। सो पानी शामको लोटेमें भरकर रख दिया जाता था। अब दीपावलीके दिनोंमें गेरुवे रगकी पुताई बाबाकी पोती कर रही थी, सो शामको कुछ पुताई करनेके बाद बाबाकी खाटके नीचे गेरुवे रगसे भरा हुआ लोटा रख दिया। उस दिन पानी भी धरनेका ध्यान न रहा। अब ये बाबा उठे और वही लोटा लेकर दो-तीन फर्लांग दूर चले गए। शौच होकर जब शुद्धि करने लगे लोटेसे पानी लेकर, नीचे गिरा हुआ तो खून दिखा हाथमें देखा कि लाल-लाल सारा खून लगा है। अरे लगभग आध सेर खून निकल गया। अब तो आफत आगई, सिर दर्द हो गया, और घर आते-आते तेज बुखार आ गया। खाट पर लेट गए। अब खाट पर पड़े हुए दुःखी हो रहे हैं। कहते किसीसे नहीं बनता क्योंकि जो गुप्त रोग होते हैं वे किसीसे कहते नहीं बनते हैं। हां या तो तब कहा जा सकता है जब कि बिल्कुल शक्ति खत्म हो जाय। कुछ देर बादमें जब बाबाकी पोती आई, सो वह तो घरकी पुताईकी धुनमें थी, पूछा बाबा वह गेरुवे रंगका लोटा कहा गया जो मैंने शामको पुताई करनेके बाद खाटके नीचे रख दिया था। इतनी बात सुनकर कि अरे वह तो गेरुवे रगका लोटा था बाबाका सारा बुखार दूर हो गया। समझमें आ गया कि वह खून नहीं था। वह तो गेरुवा रग था।

तो भैया! बहुत सी बीमारियां तो भ्रमसे लगी हैं। अभी भिन्न भिन्न हों, भ्रम हो जाय तो भ्रम होनेके कारण बोल तो सकते नहीं, क्योंकि जब भ्रम हो जाता है तो थोड़ा द्वेष जग जाता है, जिसके कारण बोलता नहीं है। जब बोलना बन्द कर दिया तो जरा-जरा सी बातोंमें भ्रम हो जायगा। यह जो कुछ करता है मुझे क्लेश पहुचानेके लिए करता है, यह भ्रम हो जाता है और उसका फल यह होता है कि एकदम बात बिगड़ जाती है। और, देखो तो, हम और आप पर आफत क्या है? हम और आप पर कुछ आफत नहीं है। आफत तो यह है कि जिनसे कुछ लेना देना नहीं उनकी चिंता करते हैं। ये किस गतिसे आये हैं और किस गतिको जायेंगे मगर चिंता उनकी बेहिसाब करते हैं। धन कम हो गया तो उसकी चिंता में मरे जा रहे हैं, यह नहीं सोचते हैं कि पहले कुछ न था, अब बढ गया है। घरके लोग कहना नहीं मानते, उल्टा चलते, यह तो उनके शल्य बना रहता है। शरीरमें वैसे ही फसे हैं। आज जरा अच्छा शरीर मिला है और फिर

मर कर पशु बन गए तो स्वकल्याणसे भी गए। कितना पापका उदय है शरीरमे फसे हैं, कितनी ही आफते हैं हम और आप पर, पर इन आफतों के अन्दर ही रहकर पुण्योदयसे कुछ क्षणिक सुख पाया है और इस पुण्योदयसे ही कुछ समय बाद बड़ी दुर्गतियोंकी स्थिति हो जाती है। उन सब आपत्तियोंसे बचनेका उपाय केवल एक ही है—भ्रम दूर करना।

देखो भैया! आपत्तियां तो आ गई सचमुचकी। आत्मासे यह शरीर चिपटा है तो शरीरसे फंस गये कि नहीं? फंस गए। तो यह रोग सचमुच हो गया कि नहीं? हो गया। पर इतना फंस जानेकी जड़ क्या है? तो खोदते-खोदते उसकी जड़ निकली यह कि परवस्तुवोंके बारेमें यह भाव कर लिया कि यह मेरा है। जड इतनी सी निकली खोदते-खोदते। एक ऐसा परिणाम बन गया कि यह मेरा है। इतने व्यर्थके परिणामके आधार पर ये विपदाएं सचमुचकी खड़ी हो गई हैं। तो इन विपत्तियोंको मिटानेका उपाय अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप परमात्माका भेद करना है। बड़ेसे मिलना है तो खूब बडेसे मिले। अधकचे बडेसे मिलनेमे लाभ नहीं है। खूब बड़ा कौन है? भगवान अरहतदेव, परमात्मदेव, वीतराग सर्वज्ञदेव, वही बड़ा है और उससे मिलने पर अर्थात् उनके गुणोंको अपने उपयोगमें रखने पर फिर समझ लो कि ससारमे कोई कष्टनहीं आता।

भगवान्से मिल कौन सकता है? वही पुरुष भगवान्से मिल सकता है, जिसने अपने हृदयको निर्मल बनाया हो। हृदयमें तो विषय भरे हों और परमात्मस्वरूपसे मिलन करलें, यह कभी नहीं हो सकता है। मैले घरमें तो पडौसीको भी आप नहीं बैठालना चाहते। कोई छोटा अफसर आ जाए और एक आधे घटे पहिले मालूम पड़ जाए, तो आप बडी सफाई करते हैं और अपने मकान को बडे सुन्दर ढङ्गसे सजाते है। अगर घरके एक कोनेमें हडिया रखी है तो उनके आगे सफेद पर्दा लगा देते हैं। तो आप एक आफीसरसे मिलने के लिए तो घरको साफ और स्वच्छ बनाते हैं और जो भगवान् तीनों लोकोंका अधिपति है, शुद्ध है. सर्वलोकोंका ज्ञाताद्रष्टा है, दोषोंसे अत्यन्त परे है— ऐसे प्रभुको आप अपने घरमे बैठाना चाहें और घरको गन्दा रखें तो क्या प्रभु आपके घरमें आएगा? नहीं आ सकता है। जिसका हृदय अत्यन्त स्वच्छ हो, रागद्वेषरहित, क्रोध, स्वार्थ, वासना कुछ भी न हों, केवल शुद्धस्वरूपकी जिज्ञासा के लिए अपना लक्ष्य बनाया हो तो प्रभु मिल सकता है।

जैसे मलिन दर्पणमें प्रतिबिम्ब नहीं दिख सकता। इसी प्रकार रागद्वेष के मलिन उपयोगमें परमात्माका स्वरूप दिख नही सकता। मलिन

हृदयकी पहिचान कैसे होगी? दूसरे पहिचान नहीं कर सकते। दूसरा पहिचान करेगा तो उसकी बोली और वाणीसे करेगा कि इसका हृदय मलिन है या कैसा है? बोलनेसे हृदयकी स्वच्छताका अनुमान किया जा सकता है। वह शुद्ध प्रेमपूर्वक बोले कि तो जगत्‌मे उसका असर क्यों न होगा? भगवानकी दिव्य ध्वनिका असर समवशरणमें विराजमान् सब जीवोंमें होता है। कारण यह है कि वहां लागलपेटकी बातोकी दिव्यध्वनि नहीं निखरती। स्वन सहज जैसा मेघगर्जन है। जीवके पुण्योदयवश उनके दिव्यध्वनि निकलती है। तो जो निर्दोष वाणी है, उस निर्दोष वाणीका दूसरों पर प्रभाव पडता है और दूसरों पर प्रभाव पडे या न पडे, पर अपनी निर्दोषता तो बनाओ, जिससे स्वयं पर अपना प्रभाव रहे। अपनेको सुखी बनाना है तो मैं केवल ज्ञानमात्र हू, ऐसा जो सहज सत्यस्वरूप है, उसे स्वरूपकी भावना बनाओ।

भैया! गृहस्थीमें यद्यपि काम अनेकों करने पडते हैं किन्तु मुख्य उद्देश्य यही बनाओ कि अपने उस सहज सत्यस्वरूपको हम निरखते रहें। अपनी ही दृष्टिसे अपना भला हो सकता है, इस कारण अपना हृदय निर्दोष रखो और प्रभुके मनमाने दर्शन करके प्रसन्न रहा करो।

अब इसके बाद यह बात दिखाते हैं कि विषयोंमें आशक्ति रखने वाले जीवोंको यह परमात्मा नहीं दिख सकता।

जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बभु वियारि।

एक्कहं केम समंति वढ वे खंडा पडियारि॥१२१॥

जिसके मनमे हरिणाक्षी (स्त्री) वसी हुई है, उसे निज परमात्मा नहीं दिख सकता है। ऐसा हे प्रभाकर भट्ट! तू विचार कर, क्या कभी एक म्यानमें दो तलवार समा सकती हैं? नहीं। इसी तरह एक हृदयमें विषयों की बात और मुक्तिकी बात — ये दोनों समा सकती हैं क्या? नहीं। सप्त नर्कमें रहने वाला नारकी सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता है और विषयोंमें आसक्त रहने वाला चाहे अपनेको बड़ा जैनी भी कहे और बडे बडे व्रतोंके कामोंमें भी लगता हो, किन्तु विषयासक्त है तो उसे सम्यक्त्व नहीं हो सकता। ऐसे चित्तमें परमात्मा नहीं दिख सकता है, किस चित्तमें कि जो विकल्पजालोंसे मूर्छित है, स्त्रीके रूपके अवलोकनसे और चिंतनसे उत्पन्न हुआ हाव भाव भ्रम विलासके विकल्पसमूहोंसे जिसका हृदय मूर्छित है, रंजित है, उस चित्तमें परमात्माका प्रवेश नहीं होता। कैसा है यह विकल्पजाल कि वीतराग निर्विकल्प परमसमाधिमें उत्पन्न होने वाला परम आनन्दका विरोधी है, आकुलताओंको उत्पन्न करने वाला है— ऐसे विषयोंसे जिसका

चित्त रञ्जित है, उस पुरुषके हृदयमे परमात्मस्वरूप नहीं दिख सकता है।

भैया! परमात्मस्वरूप तो शुद्ध ज्ञानस्वभावी है और वहा विषय और अज्ञानकी बात समाई है, तो उस परमात्माके कैसे दर्शन हो सकते हैं। कभी ऐसा पुरुष धर्म भी करे, जिसका हृदय ससार भोग और विषयों से विरक्त नहीं है, तो केवल रूढ़िकी बात है अथवा अपना पोजीशन रखनेके लिए धर्मकी धुन है, पर वास्तवमे धर्मकी ज्योति प्रकट नहीं हो सकती। जैसे एक म्यानमे २ तलवार नहीं समा सकतीं, इसी प्रकार एक हृदयमे विषय-वासना और परमब्रह्म अथवा भगवत्स्वरूप अथवा निज शुद्ध आत्मस्वरूप ये दोनों नहीं ठहर सकते हैं। पहिली गाथामे यह बताया था कि जैसे मलीन दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब नहीं दिख सकता, इसी प्रकार मलिन हृदयमे अपना भगवान्स्वरूप नहीं दिख सकता है। वह मलिनता किन बातोंसे आती है; उसका स्पष्टीकरण इस दोहेमें आ गया है कि मलिनता आती है विषयोंकी आसक्तिसे।

जितने झगडे खडे होते हैं, वे विषयोंकी रुचिसे ही झगडे खडे होते हैं। जिनका हृदय विषयवासनासे पृथक् है, जो निज शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी स्मृतिमे लगे हुए हैं, उनको ज्ञानस्वरूप दिखता है। विषयोंमें सबसे भयङ्कर विषय है स्पर्शनका। और तो सभी हैं, पर स्पर्शनका विषय सबसे भयङ्कर है। जिसे दूसरेकी निन्दाकी बात सुनने में रुचि हो, राग भरी बात सुननेकी रुचि हो, यह है उसका कर्णेन्द्रियका विषय। मनुष्यके मनका विषय तेज रहता है। जिस जीवके जितनी इन्द्रियां हैं, उसकी आखरी इन्द्रिय तेज रहती है प्राय करके। पञ्चेन्द्रिय जीवोंके कानका विषय तेज रहता है और तीन इन्द्रिय जीवोंके नाकका विषय तेज रहता है। तीसरी इन्द्रिय है नासिका। और जिसको मन मिला है, उसके मनका विषय तेज रहता है। इन पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें जिनका चित्त उलझा हुआ है, उन्हें ज्ञानस्वरूपकी खबर नहीं हो सकती।

अब हावभावका स्वरूप बताते हैं कि इनमे जिनका चित्त मूर्छित हो जाता है, उनको परमात्मस्वरूप नहीं दिख सकता। इस शरीरमे ऊपरसे देखो कि यह चादरसी मढी हुई है, तो ठीक दिखती है। जैसे मुर्देकी खोपडी होती है, उसके भीतर जो भरा रहता है, ऐसी ही चीज इस सारे शरीरमे पाई जाती है।

भैया! जिसका हृदय मोहसे वासित है, उसको भीतरकी गन्दगी नहीं दिखती है। उन्हें तो बाहरी रूप दिखता है। यह तो अपने ज्ञान और

अज्ञान का परिणाम है और सर्वत्र अशुचि है। ऐसे देहमें भी मोही जीव हावभावके कारण आनन्दित हो जाता है। हावके मायने क्या हैं? मुखका विकार। हास्य कर दिया, हस दिया, मुस्करा दिया और भाव क्या है? चित्तमें विकारपरिणामका उठना और विलास है नेत्रोंकी मटकन और विभ्रम हैं भौंहें टेढी मेढी करना, ये सब क्या हैं? यह सब एक मोहीकी पगलाई है। सार तो कुछ रखा ही नहीं है, पर जिन्हें अपने ज्ञानमय प्रभुका परिचय नहीं है। उनको ये फोकस खिलौने ही रुचते हैं। उन्हें परमात्मतत्त्व नहीं दिखना है।

लक्ष्मणजी के ८ कुमार हुए हैं। वे कुमार अवस्थामें ही विरक्त हो गए। लक्ष्मणजी बैठे ही रह गए और उनके पुत्र कुमार अवस्थामें ही मुनि हो गए और उनको ऋद्धि उत्पन्न हो गई। वे आकाशगमन करते रहे। एक सा ही उन आठों कुमारोंका रूप था। एक बार दो मुनि आये, उनको आहार दिया, इतने में फिर दो मुनि और आ गये, उनको आहार दिया, फिर दो मुनि और आ गये, उनको भी आहार दिया। वे एक ही रूपके थे। सोचा कि अरे! ये तो भोजन कर गये और फिर आ गये, ये तो तीन बार खा गये, एकसा उनका रूप था। बादमें पता लगा कि ये लक्ष्मणके ८ कुमार हैं, एक से ही रूपवान्।

भैया! यह तो होनहारकी बात है, जिनका होनहार अच्छा है, उनके छोटी उमरमें ही भाव अच्छा बन जाता है और जिनका होनहार अच्छा नहीं है तो वृद्धावस्था हो जाती है, पर आत्मकल्याणका भाव उत्पन्न नहीं होता। इस जगत्में सार क्या चीज है? जिसके सचयके लिए हम अपने आत्मस्वरूपका घात करें, राग द्वेष बढ़ाए। कोई सारभूत वस्तु हो तो बतालाओ, पर अपनी ही कल्पनासे यह जीव विचार विचार कर दुःखी होता है।

श्री कृष्णजी के कुमार प्रद्युम्न जी, जो भारी नटखट थे। बतलाओ कुमार अवस्थामें छोटी अवस्थामें विरक्त हो गए और उसके पहिले कैसे कैसे ऊधम उन्होंने किए? उनकी माका नाम था रुक्मणी। रुक्मणीकी सौत का नाम था सत्यभामा। तो सत्यभामाको छकाने के लिए और दूसरोंको आश्चर्यमें डालनेके लिए बहुत नटखटें किए। सत्यभामाके द्वार पर प्रद्युम्न पड़ गए। वे वजनदार थे, उठाये न उठे। सत्यभामाने प्रद्युम्नको उठानेके लिए औरोंको बुलाया, पर वे टस से मस न हुए। कितने ही नटखट दिखाए, पर जब ज्ञानगम्य हो गए तब सीधे हो गए।

ज्ञान और वैराग्य जगने पर सबका एकसा रूप हो जाता है। उससे

पहिले तो गड़बड़ियां रहती हैं। अभी अपने ही समाजमें देखलो जब तक वास्तविक ज्ञान और वैराग्य नहीं जगता तब तक दसों तरहके उपद्रव धर्मके नाम पर मचते हैं। ज्ञान और वैराग्यसे जब चित्त वासित होता है तब चूँकि अक्ल ठिकाने आ गई इसलिए सब कल्याणार्थी मुमुक्षु सब अपने हितका कार्य कर लेते हैं।

ज्ञानकी महिमाको कोई नहीं कह सकता है। इस धनको तो चोर लूट सकते हैं, राजा ले सकता है। कहो ऐसे कानून बन जाएँ कि आपत्तिकाल आजाय तो मकान सरकार ले सकती है। रह रहे हो, ठीक है, मगर हैं मकान सरकारके। जितने मकान हैं उनकी जब तक सरकारको जरूरत नहीं हैं तब तक रहते जावो, पर जब सरकारको मकानोंकी जरूरत महसूस होगी तब वह सरकार ले लेगी, कहेगी कि आप इस घरसे चले जावो। ऐसा उनका कानून है। और धन वैभवका तो कुछ कहना ही नहीं है, जो पड़ा रह जाये तो कितने ही ले सकते हैं। राजी से दो या वेराजीसे। अभी गाना गाने वालों सरकार इकट्ठा करले और १००-१०० रुपयेका टिकट जबर्दस्ती लगादे, इस तरह से आपका धन सरकार ले सकती है। तो इस पैसे को सरकार जब चाहे तब आपसे ले सकती है। इन विषयोंका प्रसग ऐसा है कि इनके भोगनेसे सम्यक्त्व नहीं जग सकता।

राजा सत्यंधर थे। तो वे अपनी रानीके बडे प्रेमी थी। उन्हें अपने विषयोंमें विघ्न न आए सों राजदरबारको कम करनेके लिए आधा राज्य एक काठ बेचने वाले काष्ठांगारको दे दिया। जिसको आधा राज्य मिल गया वह सोचेगा कि पब्लिक तो इसीका राज्य कहेगी, हमारा कौन कहेगा? इस लिए सारा राज्य छुड़ा लें तब तो अपना राज्य कहलाए। सो उस काष्ठांगार ने सत्यधर पर चढ़ाई करदी। अब तो उनपर आफत आगई। तुरंत सत्यधर ने एक यत्र बनाया, जैसे हवाई जहाज होता है। उसमें ३ घंटेकी ही उड़ान थी। तीन घंटे बाद वह किसी जगह गिर जायेगा। रानीको उस यंत्र पर बैठाल दिया और वह यंत्र उडकर श्मशान में जाकर गिरा। रानी गर्भवती थी, सो वहीं पर जीवन्धर कुमार उत्पन्न हुए। कथा बहुत है। पर विषयोंकी आसक्ति देखो कितनी कि सत्यधरका सारा जीवन दु खी हो गया। जब राज्य पर काष्ठागारने चढाई कर दी तो युद्धस्थलमें अचानक वैरागी हुए व उन्होंने मुनि अवस्थामें प्राण छोडे, विरक्तता अन्तमे आई। सो भव संभल गय सत्यधर विरक्तचित्त हो गया, वहां पर भी दुष्टोंने न छोडा, सिर उतार लिया, क्या भरोसा कि अभी साधु हैं, फिर दाव बैठ जाये तो लड़ने लगे। न विश्वास हुआ तो सिर अलग कर दिया।

विषयासक्त चित्तमें यह अपना शुद्ध स्वरूप नहीं दिखता है। एक पैसा कमानेका उपाय बनाते हैं तो ४-१० साल भी यदि उसमें मुनाफा नहीं मिलता है तो भी हिम्मत नहीं हारते, फॉर्म रखते हैं, धैर्य रखते हैं। कारखाना यदि विकसित हो रहा है तो धैर्य रखकर १० साल भी गुजर जाते हैं पर हिम्मत नहीं हारते एक थोड़ेसे जीवनके आरामके लिए, पर अनन्तकाल तक आनन्द पानेके लिए १० वर्ष क्या, १० जिन्दगी भी लगानी पड़े तो कुछ बात नहीं है। ऐसा सुलझा हुआ चित्त रहना चाहिए कि दुकान की जगह पर जाकर दुकानकी बात करे, और मंदिरमें आकर धर्मकी बातें करे। चाहे दुकान पर मंदिरका ख्याल रहे, पर मंदिरमें दुकानका ख्याल न रहे। मंदिरमें धन वैभवका ख्याल आए तो यह बुरा है। ज्ञानी पुरुषमें ऐसा मालूम होता है कि धर्मसाधनाके समयमें एकदम रागकी बातोंको तोड़ डालते हैं। किसी भी बातमें उपयोग नहीं लगाते।

भैया! दुकान पर बैठो तो खूब दुकानका काम करो। यह तो गृहस्थ का धर्म ही है। कौड़ी न हो तो बिना कौड़ी के मूल्य क्या है? और अगर हृदयमें विरक्ति है, कुछ जानकारी है तो सब छोड़ दो। केवल एक गृहस्थीका पालन हो, धन न कमायें तो गृहस्थीकी बात नहीं निभ सकती है। गृहस्थकी तीन बातें बताई हैं। धर्म, अर्थ और काम। धर्मके समय धर्म करें, धन कमानेके समय धन कमाएं; समाजकी, देशकी कुटुम्बकी खबर रखनेके समय खबर रखें। कोई मनुष्य चाहे कि धर्म तो अच्छी बात है सो धर्मकी ही धुनमें लगे रहें, न दुकान जावें, न कुछ करें, न कोई उद्यम करें तो वह गृहस्थीकी जिम्मेदारी को नहीं निभा रहा है और कोई सोचे कि धन ही कमायें और धर्म न करें तो वह भी गृहस्थी अच्छी नहीं निभा रहा है।

भैया! धर्मकी पुट बिना जीवन नीरस है। आप सुबह शाम मंदिर आते हैं, स्वाध्याय, पूजन करते हैं तो आपका जीवन कितना रसीला है? फिर बढ़िया-बढ़िया खाना पीना, ढंगसे रहना शोभा देता है और २४ घंटेमें धर्मकी कोई बात न पूछें, न मंदिर आना, न स्वाध्याय करना, २४ घंटे बस कमाईमें ही लगे रहें तो इससे तो जीवन नीरस हो जायेगा और फिर विश्राम भी न मिलेगा। धर्म तो आराम करनेका नाम है। थक गए विकल्प करनेमें तो निर्विकल्प समतापरिणामको देखो, आराम करो, संसारके क्लेशोंसे थकने वाला पुरुष एक सच्चे आरामको प्राप्त करता है। उसीके मायने धर्म करना है। धर्म संक्लेशमें नहीं होता है, क्लेशमें नहीं होता है। धर्म होता है निराकुलता के अनुभवमें और निराकुलताके अनुभव से ही आत्मीय आनन्दका अनुभव होता है। तो सम्यग्ज्ञान करके वस्तुस्वरूपका

सही-सही अवगम करके अपने प्रभुके निकट अधिकसे अधिक जा विराजमान हो।

अपनी जिम्मेदारी अपने परिणामों पर है। कोई भी मित्र पुत्र जिम्मेदारी आपकी नहीं ले सकते। जैसा परिणाम करोगे तैसी गतिमें तुमको जाना पड़ेगा। नरकगतिमे पहुंचनेके बाद इस जीवको होस होता है तो वहा सच्चा ज्ञान जगता है कि उस कमाईके भोगनेमे तो सभी साझीदार थे, मेरी कमाईमें मौज तो उड़ाया सबने, पर इस नरकगतिमें वे एक भी साथी नहीं हुए। तो अपनी जिम्मेदारी अपने पर जानकर एक भरकम रहना चाहिए, गम्भीर रहना चाहिए, समताका पुजारी रहना चाहिए। अपने आपके कर्म अपने आपको ही भोगने पडते हैं—ऐसा जानकर निरतर अपने परिणामों की सावधानी रखनी चाहिए। और भी बात देखो, मनुष्यकी जितनी आयु है उसके दो भाग व्यतीत होने पर आयुबधका समय आता है। जैसे किसी मनुष्यकी आयु ६६ वर्षकी है तो ६६ वर्ष तक नई आयुका बध नहीं होगा, किस गतिमें जायेगे यह निर्णय नहीं हो सकता। ६६ वर्ष तक नवीन आयुका बध न होगा। उसके बाद आयुबंधका पहिला मौका आता है। उस समयके परिणाममे जैसा बंध होगा, उसमें इस जीवको उत्पन्न होना ही पडेगा।

कोई पुरुष था पता हमें नहीं है, गुरुजी सुनाते थे, उसके चित्तमे यह भाव रहता था कि पैसा तो विनाशीक है, इसे दूसरोंके उपकारमें लगाये। परिणामोंमे तो यह बात थी मगर अपने हाथसे पैसा नहीं देना जानता था। मौका पडे तो लोगोंसे वह कह दे कि जावो जो जरूरत हो, मेरे घरसे उठा लावो। पर वह अपने हाथसे नहीं दे सकता था। कुछ ऐसा ही कर्मोंका उदय था। अब देखिये परिणाम तो है ऐसा कि लगे तो हमारा धन पर-उपकारमें, पर हाथसे नहीं दिया जा सकना। इच्छा तो रहती थी कि कोई उठाकर लगादे परोपकारमे, पर खुद हाथसे उठाकर नहीं दे सकता था। विचित्र कर्मोंका उदय तो देखो।

देखो सब बात बराबर पड़ जाती हैं। खूब अच्छी तरहसे हलुवा पूड़ी खावो, २-३ दिन खालो, फिर १५ दिन मूँगकी दाल पी लो और चाहे १७-१८ दिन आरामसे सीधे दाल रोटी खाकर समय गुजार लो, खर्चा एक ही पडेगा। ५ दिन अच्छा खालो बीमार होगये सो और १० दिन मूँगकी दाल पी लो, और चाहे १५ दिन सात्त्विक भोजन खाकर आरामसे गुजार दो। चाहे इस जिन्दगीमें पुण्यके उदय से पाये हुए समागममें खूब मौज मान लो, कितने दिन मान लोगे? मान लो १० वर्ष, २० वर्ष, फिर हजारों वर्षोंका नरक गतिका लटका भी देखलो। यहा १० वर्षका दु ख भोगकर

हजारों वर्षोंका सुख भोग लो। यहां यदि किसी चीजमें आसक्ति न हो, ज्ञान भावको सावधान बनाए रहें तो अनगिनते वर्ष तक मौजमें रहो। मरणके बाद अच्छा भव मिल गया, उस भवमें खुश रहो, बात एकसी पड़ती है। थोड़े समय कष्ट भोगलें तो अनन्तकालके लिए निर्वाणका सुख प्राप्त होता है। थोड़े समयको सुख भोग लिया तो उससे भविष्य खतरेमें रहता है।

विवेकी पुरुष वह है जो अभीसे अपना काम ठीक रखे। एक बार पडा अकाल। दो पडौसी थे। एकके पास था ११ महीनेका खानेको अनाज और १ महीनेका न था और एकके पास था १ महीनेका खानेको अनाज और ११ महीनेका न था। तो जिसके पास १ महीनेका खानेको अनाज न था उसने सोचा कि १ महीना पहिले उपवास करके व्यतीत कर दें, फिर ११ महीने खूब खायेंगे और एकने ऐसा सोचा कि एक माह खानेको अनाज है तो उसे खूब खावो, बादमें फिर देखा जायगा। तो इसने तो १ माह तक खूब आराम से खाया और वह जिसके पास ११ महिनेका खानेको अनाज था, वह थोड़े दिनमें ही मर गया। अब जिसका घर अनाजसे सूना पडा था जिसने १ महिना खूब खा पीकर व्यतीत किया, उसे १५ दिनके बादमें ही धरा धराया अनाज मिल गया। वह अनाज उसके काम आ गया।

भैया! वर्तमानमें इतनी व्यग्रता न होना चाहिए। कोई सोचे कि महीने दो महीने खूब व्यग्र होलें और फिर शान्तिसे समय निकलेगा तो जो अभीसे व्यग्र हो रहा है, उसको शन्तिका समय मिलनेका विश्वास क्या है? थोडासा कष्ट भोग लें फिर आरामसे रहेंगे। यदि ऐसा सोचना है तो मोक्ष के लिए सोचो कि थोड़े समयका दुःख भोग लें, ज्ञानका, तपका, व्रतका, ब्रह्मचर्यका, अकेले रहनेका, थोड़े समयको कष्ट भोग लो, फिर सदाके लिए सर्व प्रकारका आराम रहेगा। सीधा अपना जो स्वरूप है उस स्वरूपरूप अपनेको मानलो। दुःख तो यहां है नहीं। दुःख तो बनाए जाते हैं, दुःख बनाना छोड़ दो, सुखी अपने आप हो जावोगे, दुःख बनता है तो परपदार्थों की आसक्तिसे। परकी आसक्ति छोड दो, बस सब आराम हो गया। लोग पाप के फलसे डरते हैं मगर पाप नहीं छोडना चाहते और पुण्यसे फलको चाहते हैं मगर पुण्य नहीं करना चाहते हैं। मोहमें दोनों ही तरफके अकल्याणका वातावरण बन जाता है। इस तरहका उत्तम समागम पाकर ज्ञानार्जनका अधिक लाभ उठा लें, इससे बढकर उत्तम कार्य अपने लिए और कुछ नहीं हो सकता है।

अब रागादि विकारोंसे रहित अपने मनमें परमात्मा निवास करता

है इस बातको बताते हैं।

णियमणि णिम्मलि णाणियहं णिवसइ देउ अणाइ।
हंसा सरवरि लीणु जिम महु एहउ पडिहाइ॥ १२२॥

निर्मल मनमें अर्थात् जो रागादिकसे रहित मन है उसमें यह अनादि देव निवास करता है, अपने आत्माका जो सहज स्वरूप है वही देव है और वह अनादिकालसे एकस्वरूप है। ऐसा यह देव ज्ञानके निर्मल मनमें निवास करता है। इसमें एक दृष्टान्त बतलाते हैं कि जैसे हंस सरोवरमें लीन होता है, स्वच्छ सरोवरमें हंस निवास करता है, इसी प्रकार स्वच्छ मनमें यह परमात्मा निवास करता है। हे प्रभाकरभट्ट! उसका ऐसा प्रतिभास होता है। यहां परमात्माको दी गई है हंसकी उपमा और निर्मल मनको दी गई है सरोवरकी उपमा। जैसे महान् सरोवर कल्लोलोंसे रहित है तभी तो गम्भीर कहलाता है। तो यह मन भी रागादिक तरंगोंसे, मायाजालोंसे रहित है। ये तरंगे क्यों उत्पन्न होती हैं? स्त्रीके रूपका अवलोकन, भोगोंका सेवन, विषय साधनोंकी चिंताएँ आदिक विकल्पोंसे ये रागादिक तरंगें उत्पन्न होती हैं। ये समस्त तरंगे चित्तमें आकुलताको उत्पन्न करने वाली हैं। ऐसी रागादिक तरंगोंके मायाजालसे रहित निज मनमें परमात्मा लीन होता हुआ ठहरता है। जैसे सरोवर नीरसे भरा हुआ होता है जिसमें कि हंस निवास करता है। इसी प्रकार यहां यह निर्मल मन आनन्दरसके जलसे भरा हुआ है। यह आनन्दरस परम सुखकी सुधा है। यह रागद्वेषरहित है, निज शुद्ध आत्मद्रव्यके श्रद्धानज्ञान और आचरणसे यह आनन्दअमृत प्रकट होता है, यह मैं आत्मा अपने आपकी सत्ताके कारण जिस रूप हूं उस रूपसे अपना अनुभव हो जाय तो यह आनन्दअमृत प्रकट होता है। ऐसे निर्मलज्ञाननीरसे भरे हुए मानसरोवरमें जो वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानसे तैयार किया हुआ है ऐसे निर्मल मनमें परमात्मा लीन होता हुआ ठहरता है।

हंस जैसा साफ स्वच्छ निर्मल होता है वैसे ही निर्मलताको बतानेके लिए परमात्माको हंसकी उपमा दी है। वैसे तो हंस कहां तो संसारी जीव, दुःखी प्राणी, तिर्यञ्च गतिका, किन्तु इस बातको नहीं देखना है, केवल एक स्वच्छताका दृष्टान्त निरखना है। जैसे हंस निर्मल सरोवरमें रहता है, इसी प्रकार परमात्मा निर्मल मनमें विराजता है। हंस शब्दमें पहिले परम और लगा दो तो उसका नाम होता है परमहंस। और परमहंस नामके साधु भी बताये जाते हैं। परमहंसका अर्थ तो है उत्कृष्ट हंस, स्वच्छ, निर्मल। परमहंस शब्दका और भी अर्थ देखो। पर अहं स। परका अर्थ है उत्कृष्ट परमात्मा, अहं मायने 'मैं' याने अन्तरात्मा और 'स' मायने 'वह' अर्थात् बहिरात्मा।

इसमें बहिरात्मा, अतरात्मा और परमात्माकी बात कही गई है। उसमें क्या छोड़ना चाहिए, क्या ग्रहण करना चाहिए- इस बातको समझना है। अथवा जो परमात्मा है सो मैं हू यह अर्थ निकलता है परमहसका। पर अहं स। जो अपने आत्माकी परमात्माके स्वरूपसे तुलना करता है वह महात्मा ससारकी बेड़ियोंसे शीघ्र निपट जाता है और जो अपने आपको जिस पर्यायमें उत्पन्न हुआ उस पर्यायरूप अनुभवता है वह संसारमें रुलता रहता है।

हमें धर्मदृष्टि प्राप्त हुई या नहीं, इसकी परीक्षा तो बड़ी सीधी है। आप को अपने सम्बन्धमें यदि यह जाननेकी उत्सुकता है कि हमारे उपयोगमें धर्मका प्रवेश हुआ है या नहीं तो यह देखो कि हम अपनेको क्या समझ रहे हैं ? यदि अपनेको पुरुष हु, स्त्री हू, खडेलवाल हू, अग्रवाल हू, परिवार वाला हू, अमुक पोजीशनका हू, इन्सान हू- इसरूप विश्वास है तो यह समझो कि धर्मका प्रवेश नहीं हुआ। मैं आत्मा आकाशकी तरह अमूर्त निर्लेप निरञ्जन हू। कहा तो इन्सान है, कहा परिवार पोजीशन वाला है। यह तो शुद्ध ज्ञान-स्वरूप है जैसे कि भगवान् अरंहत और सिद्ध हैं। अपने आपमें यदि यह विश्वास बन गया हो कि मैं तो केवल एक चैतन्यस्वरूप हू और चूंकि पर-पदार्थ प्रति समय वर्तते रहते हैं, परिणमते रहते हैं, सो यह मैं आत्मा भी प्रत्येक समय परिणमता रहता हू- यदि ऐसा विश्वास है तब तो धर्मका प्रवेश है।

पर्यायबुद्धिकी बलिहारी तो देखो कि एक कन्या जिसका विवाह नहीं हुआ तो कैसी निर्भयता और स्वतन्त्रतापूर्वक अपने संरक्षक जनोंके बीच रहती है। कपडे कैसे ही पहिने है तो परवाह नहीं है, किन्तु भावर पड़ जाने के २ मिनट बाद ही उसकी चाल ढाल तो देखो, कैसे कपडे सभाल कर चलती है, और कैसी उसकी चाल हो जाती है ? भावर पड़नेके बाद किसी ने शिक्षा नहीं दी, माता, चाची, भाभी, किसीने सिखाया नहीं, पर यह तो पर्यायबुद्धिकी बात है।

उसके मनमे यह विश्वास आ गया कि मैं वधू हू। तो उसे वधूके योग्य ही सब काम करने पड़ते हैं ? उसे सिखाता कौन है। यह जीव तो स्वय चैतन्यस्वरूप है, पर मनुष्यपर्यायमें है तो कौन उसे सिखाता है ? पर मनुष्य के योग्य वह कार्य कर रहा है। तिर्यञ्चमें यह जीव पहुचता है तो कौन वहा सिखाता है, चार पैरोंसे चलना और हरी घास खाना कौन सिखाता है ? जिस गतिमें यह जीव पहुचता है स्वत ही वहा उसकी चाल ढाल वैसी ही हो जाती है। तो इस पर्यायमें जो अटका है बस वही परमात्मासे भेंट न होनेका कारण है।

भैया ! जैसे घरके कमरेकी तिजोरीमे उसके भीतर संदूकमें रखी हुई आप अपनी अगूठी कसे तुरन्त जान जाते हैं। अपनी अंगुलीमे आप देखते हैं तो सोचते हैं अरे अगूठी कहा गई ? ओह पाव सेकण्ड भी नहीं लगा कि यह ज्ञान किवाडको तोडकर भींतको चीरकर, सन्दूकके अन्दर पहुच जाता है। ज्ञान हमारा इतना पैना है, वह ज्ञान शरीरको फोड़कर, रागद्वेष आदि भावोंको तोड़कर क्या अपने ज्ञानस्वरूपमें नहीं पहुच सकता है ? पर कोशिश नहीं की। काम सुगम है, सरल है, पर यत्न न करनेके कारण वह सब कठिन मालूम पड़ रहा है। आत्माका सुख केवल आत्माकी दृष्टिमे है, दूसरोसे अपनेको शरण मानना अपनेको अशरण अधिक बना देता है। तो इस लोकमे हमारा आपका साथी कोई नहीं है। सब स्वार्थ सावनेके साथी है। वास्तविक साथी अपना है तो मात्र आत्मदर्शन है।

पहिले समयमे जब राजाभोज का जमाना था तो बहुतसे कवि लोग अपनी-अपनी कविताएँ सुनाने आते थे। राजा उन्हें खब इनाम देता था। तो एक बार चार देहातियोंके मनमें आया कि हम भी कोई कविता ले जाएँ, राजाको सुनाएँ तो मनमाना इनाम मिलेगा। सो उन चारो देहातियोंने यही ठाना कि चलना चाहिए दरबारमे। सो चले। रास्तेमे एक जगह एक बुढिया रहँटा कात रही थी। उसे देखकर एक देहाती बोला कि मेरी कविता तो बन गई। क्या बन गई ? सुनो—चनर मनर रहँटा भन्नाय। उसे रहँटा दिख गया कि वह चनर मनर कर रहा है सो कविता बना डाली। फिर आगे चले तो देखा कि तेलीका बैल दूर बधा खली भुस खा रहा है। दूसरा बोला कि हमारी कविता बन गई। क्या बन गई ? सुनो—कोल्हू का बैल खली भुस खाय। अब आगे बढ़े तो तीसरे ने देखा कि एक धुनिया कधे पर बीजना लिए चला आ रहा है। तीसरा बोला कि हमारी भी कविता बन गई। क्या बन गई सुनो— वहासे आ गए तरकसबन्द। अब तीन की तो कविता तैयार हो गई। अब चौथेसे कहा कि कविता तैयार करो। उसने कहा कि हम कविता पहिले से नहीं बनाते हैं। हम आशुकवि हैं। मौके पर ही बना लेते हैं। सो मौके पर ही बनाकर तुरन्त बोल देंगे। चारों देहाती राजा भोजके दरबारमे पहुचे। दरबारमें द्वार पर पहरेदार था। उस पहरेदारसे कहा कि राजा साहब से बोल दो कि आज चार महाकवीश्वर आये हैं। उसने राजासे कहा महाराज ! आज तो चार महाकवीश्वर आए हैं। उन्हें बडे विनयसे राजाने बुलवाया।

चारों देहाती दरबारमें खडे हो गए। उन्होंने कहा महाराज छद तो बनाया है एक, मगर हम लोगोंकी कला अद्भुत है, एक-एक चरण बनाया है।

भैया ! एक चरण वनाय बड़ी कठिन रचना होती है। राजाने कहा सुनावो। वे क्रमसे बोल रहे हैं। अब चौथे ने जो बोला वह भी बता दे। तीन चरणों के बादमें जो अंतमें चौथा चरण होगा वह समझ लेना कि चौथेकी कविता है। सुनो 'चनर मनर रहँटा भन्नाय, तेलीका बैल खली भुस खाय। वहांसे आ गए नरकस बंद, राजा भोज हैं मूसरचंद।' अब इस कविता को सुनकर राजा दंग रह गया। तो राजा साहब पासमें और बैठे हुए पंडितोंसे कहते हैं कि इस कविताका अर्थ लगावो। कविता तो सुनकर लगी मूर्खताभरी, पर जब राजाने यह देखा कि पंडित लोग भी इसका अर्थ नहीं लगा पा रहे हैं तो यह कविता अवश्य गहरे मर्मकी है। तभी तो पंडित लोग इसका अर्थ नहीं लगा पा रहे हैं। एक चतुर वृद्ध ब्राह्मण बैठा था। कहा, महाराज ! हम अर्थ लगाते हैं। यह कविता बड़े ही गहरे रहस्यकी है। पहिले भाईका यह कहना है कि 'चनर मनर रहँटा भन्नाय' मायने हमारे महाराजा चनर मनर, चनर मनर रहटासे २४ घंटा भन्नाया करते हैं।

इस २४ घंटा भन्नाने को तो महिलाएँ ही जानती हैं। जब सुबह होता है तो मंदिरमें आना, फिर मंदिरसे आकर रसोई बनाना, बच्चोंको खिला पिलाकर स्कूल भेजना, फिर सबके खिलानेके बाद स्वयं खा लेना, तब तक बज गए २, अब बर्तन माजना, दूसरे दिनके खानेके सामानकी व्यवस्था करना, अब बज गए चार, फिर दुबारा अन्तके लिए भोजन बनाना, फिर सब बच्चोंको खिलाना पिलाना और सबको खिलाकर स्वयं खा लेना। इस तरहसे २ मिनट भी नहीं बैठ पाती हैं। जब अन्थौंच करवा दिया तो फिर शाम हो गई। अब फिर वही मंदिरसे आना, मंदिरसे आनेके बाद अब हो गई रात, सो बच्चोंको जाकर सुलाना, बच्चोंको सुलानेके बादमें मुश्किलसे स्वयं ने भी थोड़ी नींद ली। जब नींद थोड़ीसी ले चुकी, तो फिर वही सबेरा हो गया। फिर मंदिर जाना, भोजन बनाना, फिर वहीं सारी क्रियायें चला करती हैं, तो इस तरह स्त्रियोंका टा चलरहँता है।

अब पुरुषोंका रहँटा देखलो। जब सुबह हुआ तो जिन्हें मंदिरका शौक है वे मंदिर जाते हैं। सूर्योदयसे पहिले पूजन किया, पाठ किया, फिर समाजसेवाकी बातें करना, भोजन करके दुकान जाना, दुकान वाले दुकान गए, आफिसका काम करने वाले आफिस गए, फिर शाम हो गई, फिर भोजन किया। ऐसी ही चर्या चलती रहती है।

हे महाराज ! आप भी चनर मनर रहँटा सा भन्नाया करते हैं। यह बात तो प्रथम कवीश्वर साहब ने कहीं दूसरेकी बात सुनो महाराज ! दूसरे कविराज यह फर्मा रहे हैं कि 'कोल्हूका बैल खली भुस खाय' याने महाराज

कोल्हूके बैलकी तरहसे रात दिन जुन रहे हैं और खानेको क्या मिलता है केवल खली और भूसा। इसका अर्थ यह है कि रात दिन कोल्हूके बैलकी तरहसे जुत रहे हैं, फिर भी आरामसे भोजन भी नहीं मिलता है। क्योंकि चिंता तो कमाई व व्यवस्था की रहती है। यहां गए, वहा गए, कभी दो बज गए, कभी चार बज गए, ठीक-ठीक खान को भी नहीं मिलता है। तो महाराज दूसरे कवीश्वरने यह कहा है। तीसरे कवि महोदयका यह कहना है कि 'वहा से आ गए तरकसबद।' मायने इननेमे यमराज आ गए, आयु-क्षय आ गया, तरकस बंद आ गया, मायने मरणका समय आ गया। फिर ये चौथे कवीश्वर जो आशुकवि है, यह कह रहे हैं कि आफत तो ऐसी बीत रही है, पर ये राजा भोज इतने मूसरचन्द हैं कि अपने कल्याणकी बात भी नहीं सोच रहे हैं। लो अर्थ लगा दिया। मूसरचद कहते हैं मूर्खको, जैसे मूसर होता है धान कूटने वाला तो उससे कोई कला नहीं है। वह तो सीधा गिरे और सीधा उठे, उसमें कुछ चतुराई नहीं है। इसी तरह मूर्ख पुरुषमे कोई चतुराई नहीं होती है।

तो ऐसी इस ससारकी स्थिति है। जो अपने घरसे हटकर परपदार्थों मे फिर रहे हैं उनको शाति नहीं है, उन्हे जन्ममरण ही भोगना पडता है। अरे जिनको प्रसन्न करनेके लिए इतनी चेष्टाएँ और विकल्प करते हो, ये समागम सदा न रहेंगे। यह पर्याय भी सदा न रहेगी। सब बिछुड जायेंगे। प्रसन्न करो अपने आपको। निर्मल बनाओ अपने आपको। प्रसन्न बनाने का अर्थ है निर्मल बनना। सो निर्मलचित्त बने तो वहा परमात्मदेव बसता है। मलिन आशयसे ज्ञानस्वरूपको कैसे खबर पड सकती है? ज्ञानका अनुभव तो तभी होता है जब इस ज्ञानके साथ कोई रागद्वेषकी टो न रहती हो। सो ऐसा निर्मल चित्त बने, वहा ही देवका निवास है।

दो भाई थे। सो मान लो बडे भैया ने कहा छोटे भैयासे कि जावो आज तुम भगवान्की पूजा करो और आज रसोईके लिए लकडी नहीं है, सो मैं जगलसे लकडी बीनकर लाता हू। छोटा भैया गया पूजामे और बडा भैया जगलमे लकड़ी बीनने चला गया। पर पूजा करने वाला भाई सोचता है कि मुझे कहां आफतमें डाल दिया, यहा मन ही नहीं लगता है और वह भाई आमके पेड पर चढा होगा, जामुनके पेड पर चढा होगा और बढिया-बढ़िया आम जामुन खा रहा होगा। बडा भैया सोचता है कि मै यहा कैसी आफतमे आ गया। यह भैया तो भगवान् के भजन गानेमे मग्न होगा, भगवानकी पूजा कर रहा होगा। यहा मन लगने की कोई बात नहीं है। मै नवसा गया हू। अब यह बतलाओ कि पुण्यबध किया है जंगलमें रहने वाले

भैया ने कि मन्दिरमें गए हुए भैयाने ? जगलमें लकड़ी बीनने वाले भैयाने ही पुण्यबंध किया। सो भावोंकी विचित्रता देखो कि जगलमें लकड़ी बीनता हुआ भी भगवान्की पूजा कर रहा है और पुण्यबंध कर रहा है और वह मन्दिरमें खड़ा हुआ भी पाप बंधकर रहा है।

मंदिर तो साधन है। कहीं यह नियम नहीं है कि मंदिरमें आकर पुण्य ही बंधे, बंध तो भावोंके आधीन है। जिसका परिणाम संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त है, इस संसारकी किसी भी वस्तुकी वह वाञ्छा नहीं करता है। क्या देखना है इस लोकमें, जो होगा वह पुद्गल ही तो होगा और भी क्या विशिष्ट रस चखना ? 'घाटी नीचे माटी' गला घाटी है और चलाया और माटी हो गया। अव्वल तो यह देखो कि गलेके नीचे उतरा क्या ? जब तक थालोंमे था, एक-एक बूँदका दाना चमक रहा था और कितनी शोभा पा रहा था। अब क्या हुआ कि लड्डूको जैसी स्थिति बनाकर गले से उतार लिया। गलेसे उतारते समय मुँह दबाकर जरा एक्सरेसे मुख देखो तो जी मिचला जायगा। और गले से उतारते समय ही उगल दो और फिर उसे देखो तो क्या देखनेको जी चाहता है ? नहीं। फिर पेटके अन्दर उसे गलेसे उतार दिया तो फिर वह मिट्टी बन गया। उसीको खाकर लोग आनन्द मानते हैं, जिसको कि आखोंसे देखने पर जी मिचला जायगा। खैर मान लो आनन्द, पर गलेके नीचे उतारने पर फिर तो वह मिट्टीकी तरह हो गया। फिर कितना ही जोर लगावे कि उसका स्वाद मेरे उपयोगमें वापिस हो जाये, सो नहीं हो सकता है।

भैया ! क्यों विषयों पर इतराते हो ? ससारमें कोई भी पदार्थ सारभूत नहीं है जो कि तुम्हारे सुखका साधक हो। फिर ससारमें किस चीजको चाहें ? इस शरीरको क्या चाहें ? इसमें तो सारी अपवित्रता ही भरी हुई है। इसमें कुछ भी सार नहीं है और भोगों को भी क्या चाहें ? भोगोंके विकल्प जब तक रहते हैं तब तक यह जीव मोक्षमार्गसे जुदा बना रहता है। तो संसार, शरीर और भोगसे विरक्त रहकर अपना जीवन व्यतीत करो और शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मभगवान्की सुधि लेते रहो तो इस दुर्लभ नर-जीवनको सफल समझो।

देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ समचित्ति ॥१२३॥

कहते हैं कि देव परम आराध्य ज्ञानमय प्रभु न तो देवालयमें है, न मन्दिरमें है, न शिलामें है, न पत्थर-प्रतिमामें है, न चित्रकी प्रतिमामें है। फिर है कहां ? तो निश्चयसे यह अविनाशी निरंजन ज्ञानमय शिव निज

परमात्मा समतापरिणाममें है। भगवान् कहां मिलेगा? न तो तीर्थमें, न मन्दिरमे, न प्रतिमामे, कही अन्यत्र नहीं मिलता। वह तो समतापरिणाममे मिलता है। समतापरिणाम हो तो प्रभुताके दर्शन होते हैं। जो समता परिणाम वाला है वही प्रभुका स्वरूप है। यद्यपि व्यवहारसे धर्मकी प्रवृत्ति चलानेके लिए स्थापनाके रूपमें वह परमात्मा है तो भी निश्चयसे यह परमात्मा समचित्त में ही ठहरता है।

समतापरिणाम किसे कहते हैं? जहां शत्रु और मित्रमें समान परिणाम हो गया हो। शत्रु हो या मित्र हो उनमें समताका परिणाम होना चाहिए। वे भिन्न जीव हैं। भिन्न जीवसे मेरी आत्मामे अनुग्रह होता है और न निग्रह होता है। अन मेरे लिए दोनो एक समान हैं। मेरा उद्धारक मेरा समतापरिणाम है, अन्य कुछ नहीं है। सुख दु:खमें समान परिणाम हो। अहो, ज्ञान व आनन्द विषयकषायोमे नहीं है। विषयकषायोंमे ही आनन्द मानना कोरी मूढता है। आनन्द तो शुद्ध ज्ञानकी वर्तना है। सुख और दु ख एक समान हैं। अहो! ये प्राणी जिसके परिचय बिना जल भुन रहे हैं, नष्ट हो रहे है अथवा जो अपने आपमें समा रहे हैं, सबसे अपरिचित बन रहे हैं—ऐसा शुद्ध ज्ञानदेव भगवान् निज आत्मा ही अपने आत्मा का शरण है। यह भक्तिपूजा स्तवन, अपने पैरो पर खडे होनेकी शिक्षा देने के लिए है। कहा भगवान्‌की स्तुति हम अपनी ओर से सोच-सोचकर करते हैं तो अपने आपसे ही सोचकर हमें आशीर्वाद मिलेगा। जैसे कभी दो मन हो जाते है देखा होगा। एक मन कहता है कि ऐसा करो और एक मन कहता है कि ऐसा करो। एक मनने पूजा किया और एक मनने भगवान्‌की ओरसे आशीर्वाद दे दिया। क्या? अपने पैरों खडे हो जावो। जैसे हम अपने बल पर खडे होकर खडे रह सकते हैं, इसी तरह अपने ही भावों पर खडे होकर अनन्त आनन्दमय हो सकते हैं।

अहो, दो चार ज्ञानी सहधर्मियोंसे मित्रता हो तो इससे बढ़कर दुनियां में कोई सम्बन्ध है क्या? नहीं। धार्मिकता का सम्बन्ध सबसे बड़ा सम्बन्ध है। लोक व्यवहारमे सबसे बडा सम्बन्ध क्या माना जाता है? भाई बहिन का? नहीं, भाई भाई का नहीं। ससुर दामादका? नहीं। साला बहनोईका? हा यह सबसे बड़ा सम्बन्ध है। अरे यह क्या सम्बन्ध है। हृदयमे धार्मिकता हो, दो पुरुष हों चाहे अनेक पुरुष हों, उनमे परस्परमें एक दूसरेसे प्रेम मिले, वात्सल्य मिले और वह एक दूसरेको सत्पथमें लगाये जानेके यत्नमे रहें, इससे बढकर दुनियामे कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। हम भगवान्‌को कुछ कहें तो हम ही भगवान्‌को अपनी ओरसे कुछ कहें, वही समझो भगवान्

का आशीर्वाद है ।

जयपुरमें एक दरोगा जी का मंदिर है। सो उसमें हम प्राय दर्शन करने जाते थे। हमने वहाँ चातुर्मास किया था। सबसे पहिली प्रतिमाके दर्शन करने को जब मैं जाता तो मैं ही अपने आपमें कुछ कहता, कहा भटक रहे हो, यहीं बैठ जावो ना। ये शब्द हमें रोज सुनने को मिले। और फिर अंतिम प्रतिमाके सामने ये हमें वही का वही सुनने को मिले तो भगवान नहीं बोलता है। साक्षात् अरहत भगवान् भी मिल जाये तो भी हम और आपसे कुछ न बोलेंगे।

कल्पना करो कि भगवान् अरहंतदेव हैं, समवशरण भी रचा है, विहार भी है, अब तो भगवान् हो गए। पर क्या उनकी बुवा, मौसी आदि न होगी ? क्या उनके मा न होगी ? होंगे। क्या उनके रिश्तेदार न होंगे ? होंगे। वे सब भी उस भगवानसे बोल लेवें तो उनको भी भगवानसे बोल लेना नसीब न होगा ? ये रिश्तेदार तो बडी दूरके हो गए, पर जो मंडपमें रातदिन भगवान्की सेवामें रहते हों और सब जगहका प्रबन्ध करने वाले हों, खास उनके भक्त हों, वे भी भगवानसे नहीं बोल सकते हैं। बोलनेको बोले, पर भगवान्से उन्हें उत्तर कुछ न मिलेगा। यहां अगर किसी पुरुषसे बोलो और जवाब न मिले तो बुराई आती है। पर भगवान् न बोले तो बुराई नहीं आती है। तो यहा अगर किसीसे बोल दो और उत्तर न मिले तो ऐक्शन लिया जाता है, मगर भगवान् प्रभुसे बोले और उत्तर न मिले। तो ऐक्शन नहीं लगता है। भगवान् तो वीतराग हैं। वह तो भक्तोंकी ओर देखता भी नहीं है। उनकी पलक भी नहीं गिरती है। ऐसी ही अर्धखुलीसी आखें बनी रहती हैं। वे भगवान् तो किसीकी ओर दृष्टि भी नहीं करते। भगवान् ही तो हैं आखिर।

भगवान् तो वीतराग है, वह किससे बोलेगा ? वह तो किसी से भी नहीं बोलेगा।

कोई एक पुरुष था। चाहे कोई सेठ हो, उसका यह भाव हो गया कि कोई राजाका लडकी थी सो उससे सम्बन्ध हो जाय। भाई राजाकी लड़की मिल ही कैसे सकती है ? उसने सोचा कि साधु बन जायें और कुछ चमत्कार दिखायें तो सब लोग दर्शन करने आयेंगे। तो वह साधु बन गया। दुअन्निया इधर गाड दे, चुअन्निया उधर गाड़ दीं और फिर उन्हें ही सबके समक्ष खुदवाये। इस तरहसे उसका बड़ा चमत्कार फैल गया। बहुतसे लोग आने लगे। जब उसका बड़ा चमत्कार फैला तो कुछ दिन बादमें राजघराना भी दर्शन करनेके लिए आया। लड़की भी आई, बादमें राजा साहबने साधु

महाराजसे कहा, महाराज कुछ हुक्म हो। बादमें साधुने सोचा कि इस ढोंगमें ही राजा लोग दर्शन करने आये, मन चाही चीज भी आई और कुछ आशीष चाहते हैं। यदि मैं शुद्ध तरहसे साधुपना निभाऊँ तो न जाने क्या परिणति हो। फिर वह शुद्ध साधु भेषमें आ गया और अपने ब्रह्मस्वरूपमें रत हो गया। यदि प्रभुभक्ति ज्ञानसहित हो तो विफल नहीं होती है।

भैया! मोह ममता तो नामको भी नहीं होनी चाहिए। किससे मोह करते हो, किससे तुम्हारा सम्बन्ध है। सब पर ही वस्तु तो हैं और जीवोंकी तो बड़ी निराली समस्या है। ये चेतनपदार्थ तो जैसा चाहें वैसा हो सकते हैं। इन अचेतनों को तो जहां रख दिया वहां रखे हैं, मगर ये चेतन तो मेंढककी तरह उछल रहे हैं, ये किसीकी परवाह नहीं करते। बडे प्रेमसे आप किसीका पालन पोषण करें, सैकड़ों अनुग्रह करें और कहीं बिगाड़ हो जाये तो सब अनुग्रह रद्दी हो गए। अब बतलावो कौनसा पुरुष दूधका धोया है कि जिसका दूसरोंके साथ ऐसा सद्व्यवहार चले कि एक बार भी कष्ट न हो? अरे जब तुम रात दिन घरके दस सदस्य रह रहे हो तो कोई न कोई बात ऐसी आ ही जायेगी कि दुखी होना पडेगा। आप सैकड़ों अनुग्रह करें उसका ख्याल रखे पर जब बिगाड़ हो जायेगा तो एक भी अनुग्रह न चलेगा। किसकी आशा करते हो, किसका विश्वास रखते हो, कौन तुम्हारा साथी है। अगर मान लो इस जीवनमें तुम्हारा साथी भी कोई है तो इससे ही तो पूरा न पडेगा। मरण अवश्य होगा। अन्य भव मिलेगा। वहा क्या हाल होगा?

भैया! ज्ञायकस्वरूप भगवान्‌को देखो वह भगवान् ही शरण है। वह भगवान् मिलेगा कहा? इसका यह प्रकरण चल रहा है। जैसे किसीके घर का लड़का खो जाये और वह बहुत ढूंढता फिरे। सैकड़ों रुपये खर्च करदे इधर मोटर दौडाए, उधर मोटर दौड़ाए, पर दिन भर ढूंढनेके बाद वह मिला अपने घरके पास ही एक पडौसी के यहां तो वह थप्पड़ मारता है, झुँझला कर कहता है कि मैंने दुनिया भर छान डाली, तू यहीं मिला। तो इस भगवान् प्रभुको सिखर जी में, महावीर जी में, मन्दिरमें, प्रतिमामें, फलांने जीमें जगह-जगह ढूंढकर हैरान हो गया। किसी दिन मिल गया तो झुँझला कर बोला कि तुम इतै धरे हो, तो भगवान् कहा मिलेगा? सब जगह खोज डालो, पर भगवान् तो समतापरिणाममें मिलेगा।

उस समतापरिणामका पूर्णरूप क्या है? अपने ज्ञानस्वरूप परमात्मतत्त्वका अनुभव हो जाये, यह है समताका पूर्णरूप। जहा कोई विकल्प नहीं, तरग नहीं, ऐसा जो ज्ञानानुभूतिरूप अभेद रत्नत्रय है, ऐसा उपयोग बनाना उसे कहते हैं समता। उस समतामें प्रभुता है। वह कैसे बने? तो

वीतराग सहज आनन्दस्वरूप एकरूप परमात्मतत्त्वका सम्यक् श्रद्धान हो, ज्ञान हो, अनुभव हो–ऐसा अभेदरत्नत्रयरूप समता वाले उपयोगमें भगवान् विराजता है। इसके लिए अभ्यास करो वस्तुके यथार्थस्वरूपके ज्ञानका। समतापरिणामका। शत्रु मित्र दोनो को देखो एक समान है। लक्ष्य सिद्ध हो जाता है तो यह समता जरूर आ जाती है पर लक्ष्य सिद्ध नहीं होता है तो यह समता नहीं आ सकती है। गृहस्थ हो तो क्या हुआ, लक्ष्य सिद्ध हो गया। तो यह स्वय देव है और ऐसे दुर्लभ जीवन को उसने सफल कर लिया। कहा तो निगोद पशु पक्षी, नारकी, तिर्यञ्च खोटे खोटे भावोंकी स्थिति और उन सबको पार करके कैसे श्रेष्ठ मनुष्य भवमे आए इस मनुष्य भवमें आकर क्या सर्वश्रेष्ठ काम यह है कि राग करें, द्वेष करें, आसक्ति करें, दूसरोंकी ओर आकर्षण करें, फसे रहें, उपयोगमें रखे उन चेतन और अचेतनोंको, अथवा क्या वैभवको माने कि यही मेरा सब कुछ है। यह तो मनुष्य जीवनका काम नहीं है। मनुष्य हुए तो ऐसा उपयोग बनाने के लिए हुए कि जिससे मैं अपने भीतरका रहस्य जान जाऊँ कि वास्तवमें मैं क्या हूं?

एक वृद्ध सेठ था, उसका लड़का था दो वर्षका। उस सेठकी जब मरणासन्न अवस्था हो गई तो उसने अपने चार मोहब्बतियोंको ट्रष्टनामा लिख दिया कि इस हमारी जायदादको आप लोग सभालें और जब लडका बड़ा हो जाय तो उसे दे देना। वह तो मर गया। वह लड़का खेल रहा था सडक पर। वहांसे निकले ठग-ठगनी, सो उस बच्चेको उठा ले गए। उनके कोई बच्चा न था सो प्यारसे उसे पाला। जब १२–१४ वर्षका हो गया तो जो जायदाद ठग ठगनीकी थी उसे ही अपनी जायदाद जान गया। यह मेरी भैंस, ये मेरे बैल, यह मेरी जमीन। अब जब १७–१८ वर्षका हो गया तो एक दिन वह नगरमेंसे निकला तो एक ट्रस्ट्री पहिचान गया। बोला तू कहा है, तेरी तो लाखोंकी जायदाद है, हम सभाल रहे हैं। तू अपनी जायदाद ले ले। अब वह लडका सोचता है कि यह हमको बहका रहे हैं। हमारी जायदाद तो ये दो भैस हैं, ये चार बैल हैं, इतनी जायदाद है। सो अनसुनी कर दिया। दूसरा ट्रस्ट्री मिला, उसने भी वही बात कही, उसे भी अनसुनी कर दिया। तीसरेने फिर वही कहा, चौथेने फिर वही कहा। सोचता है कि ये लोग देने देनेकी ही तो कह रहे हैं सो वह कहता है कि मैं २०–२५ दिनके बादमे आऊँगा तब जबाब दूगा। बनियेका लड़का था। इतनी बुद्धि तो थी ही।

वह जगलमें गया और ठगनी माताके पैरोंमें पड गया, आसू बहने लगे। माताका तो कोमल हृदय होता ही है। मा बोली बेटा! बात क्या है?

बोला–मा यह बता दो कि मैं किसका बेटा हू ? उसे दया आई तो वह कह बैठी बेटा, तू फला सेठका लड़का है। तू अच्छा था सो मै उठा लाई और ऐसे-ऐसे पाला। अब इतनी बात सुनकर उसका ज्ञान स्पष्ट हो गया कि वे चारों लोग जो कह रहे थे, वे ठीक कह रहे थे। हमारी जायदाद तो लाखोंकी है। हम फला सेठके लडके हैं। इतना ज्ञान होने पर वह लड़का ठगनी मांको क्या मा न कहेगा ? कहेगा। क्या उसी समय यह कहेगा कि ऐ ठगनी ! भूख लगी है मुझे रोटी दे ? नहीं। अरे जो बोलता था वही बोलेगा। अगर उसके खेतोंमें कोई जानवर घुस जाय तो क्या वह न खेदेगा ? खेदेगा। फिर भी उसे कुछ परवाह नहीं। क्योंकि उसकी दृष्टि बदल गई है। मेरी जायदाद तो वह है, यह नहीं है। मेरी मां, मेरा पिता ये नहीं है। सो अब धीरेसे किसी प्रकार उनसे हटकर, निपटकर अपने स्थान पर पहुच जाता है और जायदादको सभाल लेता है।

इसी प्रकार हम सभी अनन्त जायदादके धनी हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, आनन्दशक्ति, अनन्तचतुष्टयके धनी हैं, ज्ञानानन्द मेरा स्वरूप ही है। पर इन विषयकषायोंने, इस दुर्बुद्धिने, इस लोगोंके बहकावेने मुझे पतित बना दिया है। फिर कभी यह पुरुष स्वाध्याय करने लगा, कुन्दकुन्द भगवान्की पुस्तक बाची, योगीन्दुदेवकी पुस्तक बाची, ३–४ आचार्योंकी पुस्तकें पढ़ीं, क्या पढा कि तू कहा भटक रहा है, तू अपने ज्ञानको समझ। यह बात कुन्दकुन्दाचार्यने कही, यही बात योगीन्दुदेव ट्रस्टीने कही, यही बात अनेक ट्रस्टियोंने बताई। तो आखिर यह ज्ञान मैं ही तो हू। सो यह उदास होकर, विरक्त होकर अपनी अनुभूति मांको गोदीमें लोटकर पूछने लगे कि मैं किसका हू और किस पोजीशनका हू ? अपनी अनुभूतिसे पूछा तो इस अनुभूति माकी ओरसे उत्तर मिला कि तू अरहत सिद्ध प्रभु जैसा है अनन्त, आनन्दमय, ज्ञानघन है, तेरी तो अनुपम जायदाद है।

अपने सही पतेकी बात जब अपनी अनुभूतिसे मिली तो फिर क्या था ? अभिप्राय बदल गया, मेरा यह घर नहीं है, मेरा घर तो मेरा स्वरूप है, आत्मप्रदेश है। मेरी मा, मेरा बाप यह मेरा ही स्वरूप है। यह मेरी जायदाद नहीं है सोना, चांदी इत्यादि। मेरी जायदाद तो मेरा अनन्त आनन्द ही है। इतना समझ जाने पर भी क्या घरकी माको मां न कहेगा, बुवाको बुवा न कहेगा ? कहेगा। लेकिन उसका आशय बदल गया है। तो इस आशयमें यह भव्य जीव अपने आत्माके स्वरूपके निकट आता है। और जैसे ही इसको ज्ञानज्योतिकी झलक होती है वैसे ही आनन्दसे भर जाता है और उस आनन्दमें ऐसी सामर्थ्य है कि बन्धे हुए कर्म भी इसके

फट जाते हैं। तो यहां येह बतला रहे हैं कि यहा पर आत्मा कहां ठहरता है ? अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। समतापरिणाममें ही यह परमात्मा ठहरता है, सोई बताया है।

प्रवचनसारमें एक गाथामें एक जगह लिखा है कि शत्रु मित्रमें समानता रहे, सुख दु:खमें समानता रहे, प्रशसा निन्दामें समानता रहे, लोष्ठ कचनमें समानता रहे, जीवन मरणमें समानता रहे, वही वास्तवमें श्रमण है। ऐसे श्रमणके चित्तमें ही वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ठहरता है। सो इस परमात्माको अपने ही ज्ञानके द्वारा अपने ही ज्ञानमें ज्ञानमय देखो और ससारकी जड जो मोह है, उसका छेद करो।

मणु मिलियउ परमेसरहे परमेसरुवि मणस्स।
बीहिवि समरसि हूवाहँ पुज्ज चढावउ कस्स ॥१२४॥

इससे पहिले दोहेमें यह बताया था कि देव न देवालयमें मिलेगा, न न किसी मूर्तिमें, न चित्रमें, न किसी विशेष जगहमें, न तीर्थमें, यह देव कहीं नहीं मिलता, किन्तु समतापरिणाममें मिलता है, ज्ञाता द्रष्टामात्र रहनेकी स्थितिमें मिलता है। यह मदिरका प्रतिविम्ब तो इस देवके मिलनेका साधन है। स्वय ही यह देव नहीं है। इस तरह ढूँढते-ढूँढते जब यह देव मिलेगा तब अपने आपमें ही मिलेगा। जब यह देव मिले तो इससे खूब घुल मिलकर भेंट करना चाहिए। जब उस देवसे भेंट होगी तो क्या स्थिति बनेगी – इस बातका वर्णन इस दोहेमें किया जा रहा है। मन तो मिल गया परमेश्वरमें और परमेश्वर लीन हो गया मनमें तो ये मन और परमेश्वर दोनों एकमेक हो गए। अब मैं पुञ्ज किसको चढ़ाऊँ, यह परेशानी हो गई। परेशानी कुछ नहीं। एक अलकार भाषामें यह वर्णन है। जब तक प्रभु और पूजकका उपयोग जुदा-जुदा रहता है, तब तक पूज्य और पूजकका भाव रहता है और जहा उपयोग द्वारा यह और परमेश्वर एक हो जाता है तब वहा पूज्य कौन है और पूजक कौन है ? यह मन जो कि विकल्परूप है यह तो परमेश्वर में तन्मय हो गया है।

देखिए भैया ! जानने वाला तो ज्ञान है और जाना जाये ज्ञानके सिवाय अन्य चीजको। जैसे ज्ञानसे चौकी जाना, खम्भा जाना तो वही ज्ञान और खम्भा एकमेक नहीं हो सकता, क्योंकि जानने वाला और है, जानने में जो बात आई है वह और है। इस कारण ये ज्ञान और ज्ञेय एक नहीं हो सकते। पर प्रभुकी बात देखिए, प्रभु परमेश्वर ज्ञानमय है। ज्ञान ही उसका स्वरूप है। उस ज्ञानस्वरूप को यह ज्ञान जाने तो जानने वाला भी ज्ञान हुआ और ज्ञेय भी यह ज्ञान हुआ। तो यह ज्ञान और ज्ञेय एकमेक हो गए।

सो जानने वाला ज्ञानी भक्त और जाननेमें आया ज्ञानस्वरूप भगवान् तो जब इस भगवान्को यथार्थरूपमें देखा तो भक्त और भगवान् समान हो गए, एकमेक हो गए। अब पुञ्ज कौन चढ़ाए और कहां चढाए जाये ? यहां दो बातें ही नहीं रहीं। यह बात चल रही है निश्चयनयकी भैया ! व्यवहारनय की वातको निश्चयनयकी बातमें ले जाये तो वहां विडम्बना हो जायेगी। कोई सोचे कि निश्चयनयसे तो भगवान् और भक्त एक है। वहा द्वैत नहीं है। सो निश्चयनयका आशय यदि न रहा और खुल्लमखुल्ला सोचा करें कि भगवान् और भक्त एक है तो वह बात नहीं बनती।

एक वार सुनाई थी कथा कि एक धोबीके कुतिया भी थी और गधा भी था। सो कुतियाके हुए बच्चे, पिल्ले। तो वे छोटे-छोटे पिल्ले बडे सुहावने लगते थे। वे सुहावने होते ही हैं। हर एकके दिलमें होता है कि थोड़ासा खिला ले। सो वह धोबी उन पिल्लोंको खिलाता रहता था। वे बच्चे धोबीको पंजोंसे भी मारें, जीभसे भी चाटें। गधा दूरसे देखता रहता था। एक दिन गधे ने सोचा कि मैं तो इस मालिकका इतना बडा काम करता हू, जिसकी वजहसे घर भरका पालन पोषण होता है और फिर भी यह मालिक हमसे प्रेम नहीं करता है, उस कुतियाके बच्चोंसे मालिक बडा प्रेम करता है, तो बात क्या है ? किसी बच्चेको यदि गधा बता दो तो वह या तो रोने लगता है या गाली देने लगता है। तो गधे ने यह सोचा कि इस कुतियाके बच्चे मालिकको दोनो पैरोंसे मारते हैं और दांतोंसे काटते हैं, इसलिए मालिक उनसे प्यार करता है। यदि हम भी ऐसा ही करें तो मालिक हम पर भी खुश हो जाये। सो वह गधा अपनी जगहसे हटकर मालिकके पास पहुच कर पहिले दो लातोंसे मारना शुरू किया, और दांतोंसे काटना भी। जब गधे ने दोलत्ती मारना शुरू किया तो मालिकने क्या किया कि डडा उठाया और दस-बारह डडे मारे। अब गधा फिर अपने स्थान पर आ गया और सोचता है कि क्या मुझसे भूल हो गई ? जो काम कुतियाके बच्चे करते थे वही काम तो मैंने किया। वे बच्चे दो पैरोंसे मारते थे, हमने भी वैसे ही मारा, बच्चे मुखसे काटते थे, हमने भी वैसे ही काटा, पर उन बच्चोंको मिलता है प्रेम और मुझे मिले डडे।

भाई ! गधा और उन पिल्लोसे होड़ करनेमें तो पूरा नहीं पड़ सकता है। ज्ञानी, अज्ञानी की होड करें तो उससे पूरा नहीं पड सकता है। शास्त्रोंमें बताया है कि ज्ञानी गृहस्थ भी घरमें रहता है, कमाता है, भोग भोगता है फिर भी उसे बंध नहीं, क्योंकि चारित्र मोहनीयकी प्रेरणासे वह ऐसा कर रहा है तो यह अज्ञानी भी सोई बात सोच समझकर कहने लगा कि भाई

चारित्र मोहनीयका उदय है, इसलिए घरमें रहते हैं तो यह इनकी वात न चलेगी। यह तो श्रद्धामें ही आसक्त हो रहा है। वाह्य अर्थोमें तो केवल वातों से तो कर्मोका वध और मुक्तिकी वात नहीं निभती। तो यह ज्ञानकी चर्चा चल रही है कि ज्ञान परमेश्वरमें मिल गया है और परमेश्वर ज्ञानमें मिल गया है। जव दोनों समरस हो गए तो अव किसको पुञ्ज चढाऊँ? अव इससे और गहरे मर्ममें चलें तो भिन्न-परमेश्वर की वात न सोचें। अपने आपमें वसा हुआ जो ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वभाव है वह मिल गया मनमें, उपयोगमें और मन और उपयोग मिल गया इस ज्ञानस्वरूपमें तो अव क्या चर्चा करूँ और किसका आदर करूँ। यहां तो सव एक रस हो गया है।

देख लीजिए घरमें पुत्रसे, स्त्रीसे या अन्य किसीसे जो मोही पुरुष प्रेम करता है, वह एक रस हो जाना चाहता है। वह पुरुष चाहता है कि इन में मुझमें कोई भेद न रहें, एक दिल हो, एक ज्ञान हो, एक इच्छा हो। एकरस वनना चाहते हैं, पर सोचो तो सही। यहा परवस्तुवोंमें एकरसता कैसे वन सकती है? एक रसता वन सकती है तो अपने आपमें वसे हुए इस ज्ञानस्वरूप भगवान् के साथ एकरसपना हो सकता है। यद्यपि व्यवहारनय से गृहस्थावस्थामें विषय कषाय, दुर्ध्यान से वचनेके लिए और धर्मकी वृद्धि के लिए दान अभिषेक पूजा आदि व्यवहार होते हैं और किए जाने चाहियें, किन्तु वही पुरुष भावी कालमें जव वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रत होगा तो रागद्वेषके साधनोंसे हटेगा, केवल जाननहार आत्मस्वरूपमें उपयुक्त होगा। उस कालमें चूँकि वहिरङ्ग व्यापार तो कुछ है नहीं, सो वहा प्रवृत्ति की परिणति नहीं रहती है, निराकुल स्थिति रहती है। इसी कारण मित्र वनें तो भगवान्के वनें, सेवक वनें तो भगवान् के वनें।

भैया! यहा जो सग मिला है, जो करना पड़ता है उसे कर्मका दण्ड कर्मका भोग समझिये। यदि इनमें मग्न हो जायेंगे, हर्षके मारे फूले न समायेंगे तो इनका वियोग तो अवश्य होगा। जव वियोग आयेगा तो सक्लेश करना होगा। इसीमें समझो कि जितना दस-वीस वर्ष सुख भोगा होगा, वह सब सुख एक धटेमें किरकिरा हो जायेगा, सव नेस्त नावूद हो जायेगा। इस कारण सासारिक समागमोंमें प्रीति न होनी चाहिए, यह प्रेक्टिकल वात है। जो करले उसका भला है, जो न करे, गप्पे हाके, उसे कुछ नहीं मिल सकता है। ऐसे भगवत् स्वरूपके साथ लीनताकी वृत्तिके लिए ध्यानके विषय में प्रथम कर्तव्य यह है कि अपने शरीरको स्थिर करें। जैसे कि सामायिकमें वैठते हैं आसन माड़के विलकुल स्थिर आसनसे विश्राम लेने लगें।

भैया ! एकमेक बने तो अपने स्वभावके साथ, अपने भगवत्स्वरूपके साथ बने। बाहरी पदार्थोंके साथ एकमेक होने से तो धोखा ही है। अब तक के पुराण पुरुषोंके चारित्र भी बांचे हैं ना ? किसी किसीके जमानेमे उनका कितना प्रभाव था, पर अन्तिम दिनोंमें वे सब बिखर गए। कोई मर गया, कोई नरक गया, कोई स्वर्ग गया और कोई मुनि हो गया, मगर प्रेम किसीका निभ न सका। राम, लक्ष्मण, सीता इनकी होड तो कोई कर ही नहीं सकता है। वे भी मोहते हुए भी बिछुड़ गए। आज तक किसीकी भी इच्छा पूर्ण न हो सकी।

इस लोकमें कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है कि जो इच्छाए करे और तुरन्त उनकी पूर्ति कर सके। थोड़ासा तीर्थंकर महाराजको कहते हैं कि वे जब जो इच्छा करते हैं, तब उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है। इन्द्र और देव उनके सेवक होते हैं। मगर गहराईसे विचारो तो तीर्थंकरकी इच्छा भी सभी पूर्ण नहीं होती, तुरन्त पूर्ण नहीं होती। मोटे रूपमें ऐसा लगता है कि प्रत्येक इच्छा एक चारित्रगुणकी विकृत पर्याय है। वे होती हैं आकुलताओंको उत्पन्न करनेके लिए। और यह निश्चित है कि जिस कालमें इच्छा हुई, उस कालमे तो उसकी पूर्ति है ही नहीं। जल्दी भले ही इच्छा की पूर्ति हो जाए, पर कुछ समयके बाद ही पूर्ति होगी। उसी समय तो इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकती है।

एक मोटा दृष्टान्त ले। दूकान पर यह इच्छा होती है कि अभी १००) मिल जाये। तो जिस समय इच्छा हुई, उसी समय १००) मुनाफेके धरे हैं क्या ? नहीं। और चीज धरी हो तो इच्छा नहीं हो सकती है और अगर चीज न हो तो इच्छा होती है। जैसे कोई गरीब पुरुष है। बहुत गरीबीमें वह चने चबानेको तरसता था और जब बूढा हो गया और दात गिर गए, तब ऐसा पुण्य आया कि वृद्धावस्थामे उसको चनेकी कमी न रही। अब उसके यहा चनेके बोरे लगे रहते थे, पर दात टूट गए तो क्या करे ? जब दात थे, तब तो चने नहीं थे और जब दात नहीं रहे तो चनोकी कमी न रही। इसी प्रकार जब चीज धरी है तो इच्छा नहीं होती और जब चीज नहीं रहती है तो इच्छा होती है। इस इच्छा की पूर्ति कैसे हो ?

भैया ! बड़ाई तो तब है कि जिस समय इच्छा करे, उसी समय ही इच्छा पूर्ण हो जाए, पर वस्तुस्वरूप कहता है कि यह नहीं हो सकता है कि जब इच्छा हो तभी इच्छा पूर्ण हो जाए। चाहे तीर्थंकर देव ही क्यों न हों पर इच्छाके कालमे ही उसकी पूर्ति नहीं है और अगर उनकी इच्छाकी पूर्ति

इच्छाकालमें ही हो जाती तो समझो कि उन्हें सर्टीफिकेट मिल गया। जब इच्छा की, तभी पूर्ति हो गई। जिस समय इच्छा करे और तुरन्त उसकी पूर्ति हो जाए तो यह भली बात है या बुरी बात है? मोहमें भले ही कोई कह दे कि भली बात है, पर बुरी बात है। जब इच्छा करे तुरन्त पूर्ति हो जाय, यह खोटी बात है। उन्नतिकी यह बात नहीं है।

जैसे देवलोग जब इच्छा करें तुरन्त पूर्ति हो जाय, यह खोटी बात है। उन्नतिकी यह बात ठीक नहीं है।

जैसे देव लोग जब इच्छा करते हैं तो तुरन्त चीज मिलती है, इसलिए उनका उद्धार नहीं होता, वे असयमी ही रहते हैं। वे संयमको धारण नहीं करते हैं। भोगभूमिके जीवोंकी जब इच्छा होती है तब उनके भोगनेकी चीज हाजिर हो जाती है, इसलिए उनका उद्धार नहीं हो पाता। पर ये हैं मनुष्य कर्मभूमिके जो मनुष्य अनेक सकटोंका सामना करते हैं, तो हम और आप में यह सामर्थ्य प्रकट हो सकती है कि अपनेको उज्ज्वल बना सकते हैं, पूर्ण ज्ञानका विकास कर सकते हैं। जैसे जो सोना १६ बार आगमें तपे, उसमें आभा आती है, चमक आती है और जो कम तपे उसमें आभा नहीं आती है, उसमें मलिनता रहती है। इसी प्रकार जो विषयभोगोंमें ही पड़ा रहे उसमें आभा नहीं रहती बल्कि उसमें मलिनता बन जाती है। तो हम और आप कर्मभूमिके लोगोंको अनेक विपत्तियां आती हैं, सकट आते हैं तो यह भला समझना चाहिए कि हमारे उत्थानका प्रणेता है। स्वामी कार्तिकेय महाराजने लिखा है कि हम और आपको शरीर बहुत बुरा मिला है।

इस शरीरमें खून, मांस, मज्जा, हड्डी, पीप, नाक आदि हैं और भीतर सब ग्लानिकी ही चीजें भरी हुई हैं। सो यह जो अशुचि शरीर मिला है यह बड़े पुण्यकी बात है। यह अपवित्र शरीर हमारे उत्थानके लिए मिला है, कहीं यह मनुष्य देहमें ही न आसक्त हो जाय, कुशील न बन जाय, इसके लिए मिला है, पर मोही तो इन सबको भी मात कर सकने वाला है। चाहे कितना ही बुरा शरीर हो, पर ये तो उसमें ही आसक्त रहते हैं। तो अपने आपके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थमें अनुराग किया जाय तो वह मेरे हित के लिए नहीं है- ऐसी दृढतम भावना रहनी चाहिए और सबसे उपेक्षा भाव करके एक अपने शुद्ध स्वभावको ही दृष्टिके लक्ष्यमें रखना चाहिए। बस यह ही धर्म है।

यह बात भगवानके सामने करलो, जगलमें करलो, मन्दिरमें करलो, जहां ऐसा मन बने, ऐसा शुद्धस्वरूप प्रतिभात हो तो समझो कि ससारसे मुक्त होनेका निर्णय हो चुका। मोक्षमार्ग तीन भावोंकी एकतामें बताया है।

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र। यदि सम्यग्दर्शन हो गया तो समझो कि अनन्त संसार कट गए। जैसे किसी पर १ लाखका कर्जा हो और ९९९९९ रुपया और ९९ नये पैसे चुका दिये, हाँ, केवल एक नया पैसा रह गया हो। तो एक लाखके मुकाबलेमें वह एक नग पैसा क्या कीमत रखता है? इसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर अनन्त संसार कट गए। अब मात्र करोड़ों लाखों वर्ष मात्र, कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन रह गए समझ लो करीब-करीब कि वे क्या चीज रह गए। इतने वर्ष कुछ नहीं रह गए। बल्कि एक लाखके सामने एक नये पैसे का जो अनुपात है उस दृष्टिमें देखा जाये तो वह कुछ कीमत रखता है, पर अनन्तसंसारके सामने ये कुछ सागर पर्यन्त अरबों खरबों शर्वों वर्षका अनुपात कुछ नहीं है।

भैया! अपना प्रयत्न यह होना चाहिए कि मैं अपने ज्ञानस्वरूपको जाननेमें ही लीन हो जाऊँ। ज्ञान और ज्ञेय एक हो जाएँ ऐसी स्थितिमें कौन किसे पूजेगा? किसको पुञ्ज चढ़ाऊँ। यहां तो समाधिभाव प्रकट हो गया है। भगवान् और भक्त एक समान हो गए हैं। सोई कह रहे हैं कि जब तक मन भगवान्से नहीं मिलता तब तक यह पूजा, ये क्रियाएँ आवश्यक है पर जब मन प्रभुसे मिल गया है तब पूजा का कोई प्रयोजन नहीं है। देखिये साधुओंको जिनबिम्बदर्शन आवश्यक नहीं बताया है, सहज मिल जाए तो मिलें और न मिलें तो महीनों और वर्षों न मिलें। किन्तु गृहस्थोंको जिनबिम्बदर्शन आवश्यक बताया है। कदाचित् कहीं न मिल सके, २-४ मील तक न हो तो भी किसी मन्दिर और मूर्तिका दृश्य अपने उपयोगमें खींचकर परोक्ष दर्शन करें और अपनी भक्ति स्तवनका पाठ करें। ऐसा कर्तव्य क्यों रखा गया कि ये गृहस्थी अवस्थामें हैं और अपने स्वरूपको बारबार भूल जाते हैं। सो उसकी स्मृतिके लिए ये सुगम साधन आवश्यक हैं, किन्तु जिनकी स्वभावदृष्टि दृढ है, स्वयके उपयोग में भगवान् मिला है—ऐसे साधु सतो को देवदर्शनादिक बाहरी कर्तव्य आवश्यक नहीं है। उन्हें कौन करे? वे तो सब एकमेक हो गये हैं। इस तरह इस दोहेमें परमेश्वरकी अपूर्व भक्ति बताई गई है और ऐसी अपूर्व अभेद भक्ति होने पर जीवको सत्पथ प्राप्त होता है।

जेण णिरंजणि मणु धरिउ विसयकसायहिं जंतु।
मोक्खहँ कारणु एत्तडउ अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥१२५॥

यह प्रथम अधिकारका अंतिम दोहा है। इसमें यह बताया है कि मोक्षका कारण है क्या? एक शब्दमें बतावो, एक धुनमें बतावो। तो कहते हैं कि जो पुरुष जाते हुए मनको निरञ्जन भगवान्में रख लेते हैं, बस

वही मोक्षका कारण है। दूसरा कोई न तन्त्र है, न मन्त्र है, शरीर चाहे बुरा मिले, चाहे पशुका मिले, चाहे पक्षीका मिले, यह सब किस बात पर निर्भर है। ज्ञानकी जैसी दिशा बनावो वैसा ही सर्जन होता है।

एक खटमलको देखो। कहा होता है खटमल? जो खाटमें होता है वह खटमल, जो तखतमे भी होता है वह तख्तमल और जो कुर्सीमें होता है वह कुर्सीमल, ऐसे कुछ नाम हैं क्या? नहीं। अरे हो किसी जगह, नाम सबका खटमल है। ऐसे ही लोग जो जेबकट होते हैं, पता न पडे और जेब कट जाये ऐसी क्रियामें जो कुशल होते हैं, पाप करते हैं ऐसे जीव मरकर बनते होंगे खटमल। देखो खटमलके पख नहीं कि उडकर काट ले और उड जाये, पर काटनेके बाद ढूँढ़ो तो मिल नहीं सकता। मुश्किलसे रजाई बिस्तर में कहीं जब दिखता है तब पता पडता है कि ये नवाब साहब जा रहे हैं। इसी तरह इस जीवके स्वभावपर दृष्टि दें तो उनमें बहुत कुछ यह विज्ञान समझमें आता है कि कैसा परिणाम करनेका कैसा फल होता है?

भैया! कोई जीव इस जगत्मे सुखी नहीं है। अपने को असहाय समझो। जैसे बच्चा असहाय और दु खी होकर मा की गोदमे पहुचता है इसी तरह हम आप भी असहाय हैं, दु खी हैं तो दौड दौडकर छूट-छूटकर प्रभुके स्मरणमें पहुचे। प्रभुके गुणस्मरणके अतिरिक्त अन्य कुछ हमारी रक्षाका उपाय नहीं है। पुण्यका उदय हुआ इसलिए मौजमें हैं, मस्त हैं रह जावो मस्त। कितने दिन गुजार लोगे? और जितने दिन मस्ती भी होती है तो सदा मस्ती ही नहीं रहती। बीच बीचमे बडे बडे कष्ट भी होते हैं। किसी से पूछें क्यो भैया! गृहस्थीमे सुख है या साधु बननेमें सुख है? तो जो जैसी रुचिका पुरुष होगा वह अपनी उस रुचिका उत्तर देगा, किन्तु साधारणतया उत्तर मिलेगा कि जितना सुख है उतना ही दु ख है साधु और गृहस्थ दोनोमे ही।

गृहस्थीमें जब सध्याके समय खा पी लेनेके बाद जब तीन चार बच्चे घेर लेते हैं, कध पर चढकर थप्पड भी मार रहे हैं, उस समय कैसा सुख मानते हैं, कैसी मौज मानते हैं। और जब कमाना पडता है। सबकी एकसी बात नहीं रहती है या कोई रूठ जाये और उनकी कषायको साधना पडता है तब नानीकी खबर आ जाती है। नानीको धेवना धेवती बहुत प्यारे होते हैं। उसे पोता पोती इतने प्यारे नहीं होते हैं। कारण यह है कि लड़की तो दूसरे के घर जाती है, और बहुत दिनमें आती है। तो नानीको धेवता धेवतीसे बडा प्रेम होता है। दादी तो घरमे रहती है। तो जो ज्यादा समय घरमे रहता है उससे प्रेम नहीं बढ पाता है और जो कभी-कभी घरमें रहता

है उससे प्रीति बढती है। कहते हैं ना कि अजी अभी नानी की खबर आयेगी। यदि बडे प्यारसे रखा जाता है तो नानी उनको बहुत प्रिय होती है। तो जब कभी जिनको पीड़ा होती है उनको जो प्यारा होता है उसकी खबर आती है। इसी लिए तो जब कोई दु खी होता है तो ऐसा कहते हैं कि अब आई नानी की खबर। तो गृहस्थीमें जितना सुख है उतना दु:ख भी है।

अब दृष्टि डालो कि जब गृहस्थीके दु खसे ऊब जाते हैं तो कहते हैं कि इससे तो साधु होना अच्छा है। कोई दद फद नहीं। फिर जब कुछ साधुवोंको देखते हैं कि ये भी दु खी हैं तब चित्त होता है कि साधुवोंको भी जितने सुख, हैं उतने ही दु ख हैं। कहां छाटे ? ससारके किन साधुवोंमें केवल सुखका अनुमान करें ? हां, साधु होकर यदि अपने ज्ञानस्वरूपसे ही ज्ञानका नाता रखते हैं तो एकातत' वे सुखी हैं।

मोक्षका कारण क्या है कि निरञ्जनमें मन धर लें, बस यही मोक्ष का कारण है। निरञ्जन कौन हुआ ? द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूप जो अजन है, उपाधिया हैं, उनसे जो रहित है। सुखी कौन है, जो द्रव्यकर्म भावकर्म, और नोकर्मसे रहित हो। ढूँढो मिलेगा कोई ऐसा ? सिद्ध मिलेंगे। अरे साधु तो बड़ी दूर है और वह सिद्ध अपने ज्ञान और आनन्दमें ही लीन है। साधुवोंको तो अपने प्रभुस्वरूपकी कभी कभी खबर रख लेना इतना ही बहुत है। इससे ज्यादा उनका व्यवहार नहीं चल सकता है। तो ज्यादा हम उनसे क्या मिलें ? तो जिससे हम ज्यादा मिल सकते हैं ऐसा भी कोई है ? है। जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे रहित हो, इसे ढूँढो ज़रा। वह है अपने आपमें अनादि अनन्त बसा हुआ एक स्वयं सहज ज्ञानस्वभाव। इस ज्ञानस्वभावमे न तो द्रव्यकर्म है, न भाषकर्म है, न नोकर्म है, न शरीर है, न सुख दु ख है। ऐसा निरंजन जो निज परमात्म तत्त्व है उसमें जो मन धरना है उसका ही नाम मोक्षमार्ग है।

लोगोंका अभी कहा धरा है मन ? विषय और कषायोंमें। विषय कषायोंके स्वादके कारण इसे निर्विषय, अकषाय आत्मस्वभावका स्वाद नहीं आता। मीठी बर्फी खाने के बाद अच्छा भुसावली केला तो खाइए। मीठा न लगेगा, रूखा, सूखा लगेगा। तो जहा स्वाद ज्यादा मालूम होता है उस स्वादमें आसक्त होनेके बाद फिर सहज स्वाद उसे रुचता नहीं है। मिठाईका स्वाद कृत्रिम है और केलेका स्वाद प्राकृतिक है, किन्तु कृत्रिम स्वादमें आसक्ति होकर प्राकृतिक स्वाद नहीं रुचता। यह मन कहा धरा हुआ है ? विषय और कषायोमें। सो विषयकषायोंमें जाते हुए मनको निरञ्जन निज-

स्वरूपमें धरना यही मोक्षका हेतु है। इससे अन्य न कुछ तंत्र हैं, न मंत्र हैं।

भैया! जब कोई शरीरमें रोग हो जाता है तो उसका इलाज दो प्रकारसे किया जाता है। एक तो औषधिसे और एक तंत्र, मंत्र, जापसे। तो औषधिमें तो सर्व रोगोंकी पृथक् पृथक् औषधि है और ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि उस औषधिसे रोगोंमें फायदा भी पहुचता है। पर औषधिके अतिरिक्त अन्य कुछ जादू, टोना, तंत्र मंत्रमें बढ़ना चाहें तो सब का सिरताज एक ही मंत्र है। वह है निरञ्जन ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करना। एक निरञ्जन ज्ञानस्वभावकी दृष्टिमें लगो तो औषधि कई दिनोंमें इलाज कर सकेगी और यह ज्ञानदृष्टि कुछ ही समयमें मूलत इलाज कर देती है। यह एक विचित्र जादू है। एक ज्ञानदृष्टि आ जाये तो स्वयमेव ही जो कुछ रोग होता है वह सब दूर हो जाता है।

कभी धनञ्जय गृहस्थ थे। पूजाका उन्हें बहुत अनुराग था। एक दिन ये तो कर रहे थे पूजा और उसी समय धनञ्जय सेठके लड़के को सापने डस लिया। वह लड़का बहुत विह्वल हो गया। तुरन्त उस लड़केकी मा मंदिर पहुची, जहा कि धनञ्जय पूजा कर रहे थे। चिल्लाने लगी, अरे लड़के को सापने डस लिया तुम्हें पूजाकी पड़ी है। अब भी धनञ्जय अपनी पूजामें ही लीन रहा। स्त्रीको बड़ा क्रोध आया सो वह घरमें आकर उस अधमरे लड़के को उठा लिया और मंदिरमें डाल दिया, कहा तो इसे अब जिन्दा करो चाहे मारो। छोड़कर चल दी। इतने पर भी धनञ्जय अपनी प्रभुभक्तिमें ही लीन रहे। वे बड़े कविराज थे। जिनकी कलामें थोड़ा प्रवेश करनेमें उस कलाकी महिमा जानी जा सकती है।

धनञ्जय कविने एक ऐसा पुराण बनाया है कि उसी पुराणके सब श्लोकोंमें रामचन्द्रजी का चरित्र चल रहा है और साथ ही पांडवों का चरित्र चल रहा है। क्या साधारण विद्वान् कोई ऐसी कविता कर सकता है? जो श्लोक पढ़ो उसमें ही रामका अर्थ निकले और पाण्डवोंका भी अर्थ निकले। उनकी सारी जिन्दगीका चरित्र लिख डाला। कवि धनञ्जय सेठकी बात कह रहे हैं। सर्विस वाले कवि नहीं थे। वे सेठ धनञ्जय कवि थे। उन्होंने श्लोक रचनेमें कोई कलम कागज नहीं लिया। कवि लोग जब कविता करते हैं तो थोड़ी काट छाट करना पड़ता है। कभी कुछ बनाया, कभी कुछ बनाया। उन्होंने कागज पेंसिल नहीं ली, जो उन्होंने भगवान्का स्तवन किया। स्तवन करते-करते उसको कवितामें बोलते गए।

बीचमें जब यह काव्य पढ़ा— 'विषापहारं मणिमौषधानि मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च। भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति पर्यायनामानि तवैव तानि॥'

इस काव्यमें यह भाव भरा है कि लो विषापहार मणिकी दृष्टि बना कर औषधि, मत्र, रसायनकी दृष्टि करके यहा वहा लोग घूमते फिरते है। हीरादेव, रत्नदेव कहते हैं ना कोई। हमारी राशिके नामपर नीलम फिट वैठेगा। हा तुम्हारी राशिका नाम नीलम ठीक है। तलाशते हैं कि हमें नीलम दे दो, जड़ानेके काम आयेगा। धन आयेगा, वैभव होगा और जिस पर चाहे उस पर असर होगा। ऐसे ही सब छोड़कर बैठ जाएँ तो क्या सब बन वैठेंगे ? घूमते फिरते है। औषधि, मंत्र, रसायनकी तलाशमे डोलते फिरते हैं, पर हे नाथ ! ये लोग कोई तुम्हारा स्मरण नहीं करते। ये सब मत्र, औषधि, तत्र रसायन तुम्हारे ही पर्यायवाची नाम है। ये कुछ और नही है।

भैया ! और भी गहरे चलें तो अपने आपका अपनी सत्ताके कारण जो सहजस्वरूप है उसकी दृष्टि होना ही सर्व रागोके विनाशका मूल है। जगत्मे कोई मनुष्य दुःखी नहीं है और दुखी होनेकी कल्पना करें तो सब दुखी हैं। अपने शुद्धस्वरूपको निहारो और अपनी ही ओरसे देखो तो यहां एक भी दुखी नजर न आयेगा। पर ऐसे जगत्के जीव हैं नहीं, सो अन्य जीवको जब सुखी और आरामसे देखेंगे तो दुख बढ़ जाता है। कोई देहाती आदमी छोटे गावमें रहने वाला जो ज्वारकी रोटीमें चैन मानता है उसने कुछ देखा नहीं है। यहा तो एक आध मिठाई पापड आदिकी कमी रह जाये तो झुंझला उठेंगे, मगर वहा चनेकी रोटी भाजी खाकर देहाती मस्त रहता है। वह देहाती कोई क्लेश नहीं मानता। यदि आपकी उस देहाती से खटपट हो जाये और उसे कष्ट पहुंचाना हो तो एक तरकीब है, वह क्या कि उसे शहरमें ले आवो और छक कर उसे रसगुल्ले इमरती खिला दो। बस आपने उससे दुश्मनी मना लिया। अब उसका जीवन दुखमय बना दिया। दो दिन रसगुल्ले इमरती खिलाकर उसका सारा जीवन किरकिरा कर दिया। अब उसे चैन कहा ? कहा तो वह भाजी रोटीमे मस्त रहता था, उसे कोई कष्ट न था, पर अब उसे दुःखी बना दिया।

भैया ! आवश्यकतावोंके माफिक अपनी ओरसे किसी भी मनुष्यको दुख नहीं है। किन्तु दूसरोका सुख, वैभव, आराम देख करके जो यहासे तृष्णाकी तरग उठती है, उस तृष्णातरगसे दुखी हो जाता है। मुक्तिका कारण और है क्या ? विषयकषायोंमे जाते हुए इस मनको निरजन ज्ञानस्वभावमें स्थित करना यही मोक्षका कारण है। मोक्षका कारण यत्र, तत्र, मत्र, औषधि आदि कुछ नहीं है। धन्य है वह समागम चाहे घरका हो, चाहे समाजका हो और चाहे साधुवोंका हो, जिस समागममें दूसरोंसे इस आत्मा की बात सुनने को मिले, मननको मिले। स्त्री भी यदि ऐसी हो चर्चा करे,

पुत्र और नौकर भी ऐसी ही चर्चा करें, ऐसे इस निरञ्जन नाथकी याद दिलाते रहें तो वह समागम धन्य है। सच्ची मित्रता यही है कि विषयकषायों में जाते हुए मनको थाम दें, ऐसा वचनव्यवहार करें।

दूसरोंको विषयकषायमें लगाकर माने कि इन पर मैंने प्रेम किया तो प्रेम नहीं किया बल्कि आपने दुश्मनी बनाई। जैसे किसी देहाती पुरुषसे वैर निकालना हो तो उसका उपाय है कि कुछ नये-नये विषयोंमें जो उसे कठिनतासे प्राप्त हो सकते हैं उसमें चित्त लगवा दो। तो जो जान-जानकर उछल-उछल कर पुत्रको मित्रको विषयकषायोंमें जुड़ाते हैं, उपदेश देते हैं, समझाते हैं तो भला बतलावो कि तुम उन पर प्रेम कर रहे या उनसे वैर बन रहें हो। समागम तो वही सराहनीय है जिसमें सर्व विविक्त ज्ञानमात्र निज आत्मस्वरूपकी खबर रहा करे।

भैया! जैसे धनकी कमाईमें आपका लेखा जोखा है कि भाई लो ५ वर्षसे मैंने इतनी उन्नति की, इतना तो संचय कर लिया है। ऐसा ही उत्साह आत्मज्ञानके संचयमें जगे कि लो चार वर्षमें हमने अपने को इतना बना लिया है कि जरा-जरासी बातोंपर क्रोध नहीं आता, घमडकी बातकी भीतरसे तरग नहीं उठती। तो दिलमें कोई मायाचार न रहे, लोभकी कोई बान न रहे, हमारी इतनी हिम्मत रहे कि बाह्यवैभवका या अन्य पारिवारिक जीवोका जो कुछ होता हो, वे सब उनके आधीन हैं, उनके वे ही जिम्मेदार है—ऐसा चिंतन करे तो केवल आत्मदृष्टिके लिए प्रेरणा जगे। कुछ तो उपयोग में आना चाहिए। जैसे धनका हिसाब हो जाता है कि २ वर्ष पहिले से अब हमारी स्थिति ड्योढी है, जैसे वहा समझमें आता है इसी प्रकारकी समझ धार्मिक ज्ञानमें और आत्माके आचरणमें आए।

भैया! इतना तो समझमें आना चाहिए कि इतने वर्षोंमें धर्मके मामलेमें अब सवायापन आया है। कुछ दिखना तो चाहिए। पर आज भी वैसे ही रहे जैसे १० साल पहिले थे। पहिले जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह सताते थे वैसे ही और उससे भी अधिक अब सता रहे हैं क्योंकि जरा बडे हुए तो और परिचय बढ़ गया, इज्जत बढ़ गई, लोगोंमें तनिक बात बन गई। सो अब लोगोंकी छोटी-छोटी बातें देखकर जरा अधिक क्रोध आने लगा तो क्या किया हमने १० वर्षमें? क्या आगे बढे? नहीं। ज्योंके त्यों रहें, बल्कि पीछे हो गए। तो अपने आपकी सुध तो लो, अपने आप पर दया तो करो। जगत्का कोई जीव हम और आपके लिए शरण नहीं है। किसकी आशा तकते हो? घरका ही पुत्र तो काम न देगा। घरके ही वे मित्र जन जो बहुत बड़ी हिम्मत दिलाते रहे, समय आने पर साथ न देंगे।

दोहा १२५

एक कोई सेठ राजाका बड़ा मित्र था। उसने राजाको बहुत सुन्दर घोड़ा भेंट दिया। राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि जब तुम पर कोई आपत्ति आयेगी तो हम तुम्हारे सहायक होंगे। अभाग्यवश, सेठ कुछ समय बाद निर्धन हो गया। जब सेठ राजा से सहायता मांगने गया तो राजाने उसके रहने के लिए एक बड़ा कमरा दिया और २० बकरिया दीं और कहा कि तुम इनमें गुजारा करलो। कुछ समय बाद २ बकरिया मर गयीं तथा १८ रह गयीं। राजा सेठ से पूछ लेता था कि काम ठीक चल रहा है या नहीं। १० और मर गयीं तो १० रह गयीं। ६ माह गुजर गये। एक दिन राजा ने पूछा तो बकरियां २८ हो गयीं। राजाने कहा कि सेठजी तुम्हें २ लाख, ४ लाख, १० लाख जितने रुपये चाहिए लो और कुछ व्यापार करो। सेठ जी ने कहा कि इतनी बात ६ माह तक क्यों न कही? राजा बोला कि हम मौका देख रहे थे कि कब तुम्हारा भाग्य पनपे। जब तुम्हारे पुण्यका उदय आया तो तुम्हे धन देनेको कहा और अगर पाप ही उदय रहता तो यह सब धन मिट जाता। इसी परीक्षाके लिए मैंने तुम्हे बकरियां दे दी थीं। मैंने देखा कि तुम्हारा समय खोटा चल रहा है, इसलिए नहीं कहा था। अब पुण्यका उदय आया है, अब तो ले जावो लाखों रुपये। सेठने कहा कि जब मेरा उदय अच्छा आ गया है तो हमे कुछ न चाहिए। थोड़े ही समयमें उसका पुण्योदय था, सो धनी हो गया।

कोई किसी का सहायक नहीं है। अपनी आत्मा ही हमें अपने लिए सहायक है। इसलिए अपने आप पर ही भरोसा रखो व अपनेमें लीन रहो।

जगत्के जीव सुख शान्तिकी तलाशमें मन्त्र तन्त्र औषधिकी पूछ किया करते हैं। आत्माके आनन्दका सम्बन्ध मात्र ज्ञान से ही है। तो मन्त्र तन्त्र, औषधिरूप परपदार्थ इस आत्माके आनन्दका साधक कैसे हो सकते हैं? आत्माके आनन्दका साधकतम तो मात्र सम्यग्ज्ञान ही है। सो हे भव्य जीव! एक यही यत्न मोक्षका कारण है कि शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनाके प्रतिकूल जो विषककषाय हैं, उनमें जाते हुए इस मनको वापिस करले। वीतराग, निर्विकल्प, स्वसम्वेदना ज्ञानबलके द्वारा इसे लौटा लें और शुद्ध आत्मद्रव्यको अपने उपभोगमें लगावें। जो विषयकषायोंको चित्तसे हटा कर अपने ज्ञानस्वरूपमें लगाते हैं, वे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। अन्य कोई चाहे मन्त्र तन्त्र आदि बलिष्ठ भी हों, किन्तु वे मोक्षको प्राप्त नहीं कर सकते। क्या मोक्ष पहलवानीसे मिलता है? कोई आदमी दण्ड बैठक लगा लेता है तो ऐसी पहलवानीसे क्या कोई मोक्ष पा लेगा? कोई बनिया सेठ करोड़पति है तो वह पैसेके बल पर सर्व प्रकारके आराम और ठाठ रख

सकता है, पर, क्या, वह पैसे के बल से मोक्ष प्राप्त कर सकता है ? न बल काम देगा, न धन काम देगा, न अन्य कोई काम आयेगा। मोक्षकी प्राप्तिमें तो अपना शुद्धज्ञान ही काम देगा।

इस प्रथम महाधिकारमें मुख्यतया तीन प्रकारकी आत्माओंका वर्णन है— जगत् मे जितने भी आत्मा हैं, उन व आत्माओंमें कोई आत्मा वहिरात्मा है। कोई आत्मा अन्तरात्मा है, कोई आत्मा परमात्मा है— ऐसे इन भिन्न-भिन्न आत्माओंमें तीन प्रकारसे आत्मा पाये जाते हैं। एक ही आत्मामें ये तीन शक्तिया मौजूद हैं। जो आत्मा वहिरात्मा हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, अज्ञानी हैं, उनमें अन्तरात्मा होनेकी शक्ति है। वह हो सकता है और परमात्मा होनेका भी उनका स्वभाव है। तीन प्रकार की शक्ति प्रत्येक आत्मा में है। जो आज अन्तरात्मा है, वह पहिले वहिरात्मा था, परमात्मा होगा। जो इस समय परमात्मा है वह पहिले अनन्तकाल तक वहिरात्मा बने रहे, पश्चात् अन्तरात्मा हुए और अब परमात्मा बने हुए हैं। प्रत्येक आत्मामें तीन प्रकार की शक्तिया मौजूद हैं।

वहिरात्माका अर्थ है कि अपने आत्मासे भिन्न पदार्थोंमें आत्मतत्त्व ढूंढना। अर्थात् ऐसी श्रद्धा करना कि मुझे ज्ञान वाहरी पदार्थोंमें मिलता है। ये वाहरी पदार्थ न हों तो मेरा जीवन न चल सकेगा, मेरी सत्ता नहीं रह सकती। ऐसा विश्वास जिन जीवोंके होता है, उन्हें वहिरात्मा कहते हैं। वहिरात्माको यह खबर नहीं है कि यह मैं आत्मा सत् हू, स्वत सिद्ध हू, सुरक्षित हू, अविनाशी हू। वाहरी पदार्थोंसे मुझे ज्ञान और आनन्द आता ही नहीं है, वल्कि वाहरी पदार्थोंमें उपयोग जाने से यह अपने अन्तरङ्गमें रीता हो जाता है। ज्ञान और आनन्द स्वभावको ठुकराता है, उससे इसकी हानि ही है। तो जो आत्मस्वरूप को नहीं समझता है। वाहरी पदार्थोंमें मिथ्यात्व आत्मीयता किया करता है, उसे वहिरात्मा कहते हैं।

अन्तरात्मा पुरुष महान् आत्मा है, उसे अपने आपके स्वरूपका स्पष्ट बोध है कि यह चैतन्य प्रकाशमात्र सर्वमूर्त व अन्य अमूर्त पदार्थोंसे निराला ज्ञान भाव मात्र यह मैं आत्मतत्त्व हू— ऐसा उनके उपयोगमें दृढतम निर्णय है। जिसमें सुख और दु खका अनुभव होता है और जो अह प्रत्यय द्वारा वेद्य है, मैं हू। 'मैं' में सबका अनुभव चलता है। मैं कह रहा हू, मैं जा रहा हु, आदि जिसके लिए मैं कहता हू, वही तो मैं आत्मा हू। इस आत्मा का जिसके शुद्ध आत्मस्वरूपमें निर्णय है, उसको अन्तरात्मा कहते हैं। यही अन्तरात्मा ज्ञानी पुरुष ज्ञानवलसे अपने स्वरूपकी ओर झुककर जो

विषयकषायोंसे निवृत होकर आत्मामें शान्ति प्राप्त करता है, उसे कहते हैं उत्कृष्ट महात्मा।

यही अन्तरात्मा बन जाता है परमात्मा। परमात्मा तीन लोक, तीन कालके समस्त पदार्थोंको एक साथ स्पष्ट जानता है, उसके रञ्च भी आकुलताए नहीं हैं। ऐसे ये तीन प्रकारके आत्मा होते हैं। तीन बातें क्या हैं, क्या होना चाहिए? इस प्रकरणको सुनकर अपने लिए कुछ निष्कर्ष निकालना चाहिए। बहिरात्मा होनेमे इस जीवको लाभ नहीं है। यह मोही जीव परवस्तुओं को अपना मानता हैं, किन्तु कोई भी परवस्तु इस आत्माका बन कर रह सकता है क्या? नहीं। न राम रहे, न रावण रहे, न भीम रहे, न वीर रहे, न बडे बलवन्त रहे, जिनके समयमे जिनका बड़ा चमत्कार था, साम्राज्य था, वे भी इस लोकमें नहीं रहे। बहिरात्मा होने से क्या लाभ है?

जिस प्रकार शहद लपेटी तलवार छोड़ी नहीं जाती, खाये बिना मन नही मानता, जीभ से उसे चाटते है, पर उससे जिह्वा कट जाती है। इसी प्रकार ये मायामय चिकने जो दृश्य है, वे अत्यन्त पर हैं। जिनसे रञ्च भी सम्बन्ध नहीं है। आज हैं, हो गए, कुछ दिन पास रहते ही हैं। परद्रव्य चले कहा जायें? यदि ये हैं तो हैं और नहीं हैं तो नहीं हैं, पर अज्ञानी जीव अपनी ओर से ज्ञानमे वासित होकर सर्व परद्रव्योंको अपना मान लेता है। उन्हें छोड नहीं सकता, उन्हें रख भी नहीं सकता, यही तो भूल है। बहिरात्मापनको हमें छोड़ देना चाहिए और अन्तरात्मात्वको हमें स्वीकार करना चाहिए।

भैया! अपना लक्ष्य परमात्मत्व विकासमे रहना चाहिए। ऐसी जिनकी मति है, वे सच्चे श्रावक हैं, साधुजन हैं। मनुष्यभवका लाभ ऐसे ही लोग पाते हैं, जो समस्त परद्रव्योंको छोडकर केवल ज्ञानमय कर्मादिक रहित ज्ञानप्रकाशमात्र निजआत्मस्वभावको तकते हैं, वे परमात्मा होते हैं। इस परमात्मत्वके मर्मको बड़े-बडे पुण्यवान् भी नही जान सकते, किन्तु एक स्थिरचित्त होकर सर्वपदार्थोंका विकल्प छोडकर इस शाश्वत आत्मतत्त्व के अनुभवके लिए आग्रह करलें तो मनुष्य क्या पशु पक्षी भी इस आत्मतत्त्वके मर्मको जान सकते हैं।

जब रावण सीताको हरकर लिए जा रहा था तो उस जटायु पक्षीने सीताका बड़ा पक्ष लिया। रावणसे जब तक दम रहा लड़ता रहा, पर इस रावण दुराशयीने उस जटायुकी गर्दनको तलवारसे काट दिया और जटायु परोपकारी भक्त बनकर मरकर देव बन जाता है। तो इन पदार्थोंको देखो,

कभी कुछ होते हैं, कभी कुछ। लोकमें एक बात स्थिर नहीं रहती है। किस पर नखरे किये जायें। यह अन्तरङ्ग आत्मा ज्ञानी पुरुष इस समस्त विश्व को मायामय जानकर इनसे उपेक्षित रहते हैं और इसीके परिणाममें वे निराकुल मोक्षमार्गी होते हैं। देखो इस आत्मतत्त्वको। यहा न तो रूप मिलेगा, न रस मिलेगा, न गध मिलेगा, न शब्द मिलेगा। जरा देखो तो अपने निजस्वरूपको जो ज्ञान भावमात्र है, जो अपने स्वरूपको त्रिकालमें भी नहीं छोड़ता।

जो परके स्वरूपको भी नहीं ग्रहण कर सकता। ऐसा यह भोलाभाला शुद्ध सरल ज्ञानमात्र पवित्र इस परमातत्त्वको देखो। इसके दर्शनमें ही अलौकिक आनन्द प्रकट होता है। जरा और चलकर देखो। यह तो एक ज्ञानमात्र भाव है। इसका जन्म क्या, इसका मरण क्या। यह तो अपने स्वरूपसे ज्ञानमात्र ही है। प्रतिक्षण वर्तता रहना है। इसके जन्म मरण भी नहीं हैं। अब जरा और आगे चलकर देखो तो इसके क्रोध भी नहीं, क्रोध मान, माया, लोभ भी नहीं। इसके व्रत सयमकी साधना भी नहीं है। यह तो मात्र ज्ञानप्रकाशस्वरूप है। इस लोकमें जितने भी दर्शन प्रकट हुए हैं नैयायिक, मीमासक, साख्य, भट्ट, बुद्ध आदि जितने भी दर्शन हुए हैं ये सब गप्प नहीं मारते हैं। इनको कुछ नजर आया है किन्तु भूल यह हुई है कि जो नजर आया है उसके सिवाय किसी और गुण पर विचार नहीं करते।

यदि हम दक्षिणकी ओर मु ह करके भींतको देखें तो मुझे यह भींत ही दिख रहा है किन्तु इसके मायने यह नहीं हैं कि दूसरी ओरकी भींत ही नहीं है। यदि दूसरी ओरसे भींत न हो तो यह टिक कैसे सके, इस मकानके अन्दर। इसी प्रकार जब द्रव्यदृष्टि करके हम आत्माके नित्य स्वरूपको देखते हैं, किन्तु इसमें मायने यह नहीं हैं कि इस आत्मामें पर्यायरूप अनित्यस्वरूप ही नहीं है। जब पर्यायदृष्टि करके हम आत्माके अनित्य स्वरूपको देखते हैं तो उसका अर्थ यह नहीं है कि आत्मामें शुद्ध नित्यस्वरूप है ही नहीं। तो अनित्य पर्याय भी नहीं बन सकता। यदि आत्मामें अनित्य पर्याय नहीं है तो आत्माका एक स्वभाव भी नहीं बन सकता।

एक कहानीमे कहते हैं कि एक पडित जी के गाय चराने वाला बरेदी गाय चराने ले जाता था। एक महीना चरानेके बाद उसने वेतन मागा, गायों की चराई मागी तो पडित जी बोलते हैं कि तुम किससे मांगते हो? जिसने गाय चराने को दी थीं वह तो नष्ट हो गया। यह मैं दूसरा हू। क्षणिकवादी लोग ऐसा मानते हैं कि एक घटेमें हजार आत्माएँ यहा पैदा हो जाती हैं। एक ही आत्मा एक घटे तक नहीं रहती। एक ही आत्मा जन्मसे मरण तक

नहीं रहता। मिनट-मिनट ही क्या, सेकेण्ड-सेकेण्डमें, सेकेण्ड क्या आवली मे आवली भी क्या, एक-एक समयमे यह जीव नया-नया आया करता है। ऐसा क्षणिकवादी लोग मानते हैं। सो वे पंडित जी क्षणिकवादी थे। बरेदी ने चराई मागी। उसने कहा कि जिसने महीने भर पहिले गायें चरानेको दी थीं वह तो अब नष्ट हो गया। बरेदी बेचारा अपना मुँह लेकर घर चला आया। अब वह सोचता है कि पन्दित जी ने तो हमारे साथ चालाकी की है। तो दूसरे दिन उसने गाय घरमें बांध लिया। अब पंडित जी ने जब देखा कि गाय छोड़ने बरेदी घर नहीं पहुचा। कई दिन हो गए। वह पंडित पहुंचा व बोला, हमारी गायें क्यो घर नहीं भेजीं? बोला, जिसको आपने गाय चराने को दी थीं, वह आत्मा तो नष्ट हो गया है। यह तो दूसरा आत्मा है। जिसे दी थीं, उससे मागो।

देखो एक नित्यस्वभाव माने विना व्यवहारमें गुजारा नहीं चलता। और कोई ऐसा ही ढूँढ़ो जिसे नित्य मान लें कि हिले डुले नहीं, कोई परिणमन न हो तो जगतमें कोई काम भी चल सकता है क्या? इसलिए यह सर्व विश्व नित्यनित्यात्मक है— ऐसा माना जाता है। तो इस अनित्यकी दृष्टि न देकर जो त्रिकाल शाश्वत है ऐसे आत्मतत्त्वको देखो। इसमें क्रोध, मान, माया, लोभ भी नहीं है, यह तो स्वभावतः ज्ञानस्वरूप है। एक भगोनेमें १० सेर पानीमें कोई रग डाल दो, पीला रग डाल दिया। आपको दिखेगा कि पानी पीला हो गया है पर क्या सचमुच पानी पीला हो गया है? कतई पीला नहीं हुआ है, पानी तो जैसा था वैसा अब भी है। उसमें पीले रंगका विस्तार है। जो रग पहिले छोटीसी पुड़ियामें आ गया था, वह रंग पानीका निमित्त पाकर ऐसा फैल गया है। फिर भी वहा पानीमें पानी है और रगमे रग है।

एक ग्वालिनी थी। सो अपने गावसे ५ सेर दूध शहर बेचने ले जाये। तो रास्तेमे एक बड़ी नदी पड़ती थी। उसमें से पाच सेर पानी मिला ले। तो अब हो गया १० सेर। सो वह दूध बेच आए। जब महीना भर हो गया तो जिसके घर दूध बँधा हुआ था, उनसे महीने भरके अंतमे रुपये ले लिये। मान लो ५० रुपये हो गए। वह ५० रुपये की पोटली बांधे खुश हुई चली जा रही है। मनमें सोचती जाती कि अच्छा शहर वालोंकी आखमें धूल झोंका। २५ रुपये की जगह पर ५० लिया। जब रुपयोंकी पोटली लिए जा रही थी तो फिर वही नदी पड़ी। उसने सोचा नहा लें। रुपये रख दिये और नहाने चली गई। इतनेमें एक बदर आया और वह रुपयोंकी पोटली उठाकर नदीके किनारे खड़े हुए पेड़ पर चढ़ गया। अब ग्वालिनी हाथ जोड़ती है, अरे कुछ दे दे। चने दिखाती है बदर तो चचल होते हैं। उसने

गठरी खोल ली। अब वह एक रुपया तो डाल दे सड़क पर और एक रुपया डाल दे पानी में। इस तरह आधे रुपये पानीमें चले गए और आधे रुपये सड़क पर आ गए। जब ग्वालिनी नहा चुकी तो सड़क पर पड़े रुपयों को बटोरा और घर चली। सोचा कि पानीके रुपये पानीमें चले गए और दूधके रुपये हाथमें आ गए।

भगौने के पानीमें जिसमें रंग घोल दिया है, क्या रंग पानीमें आ गया? दिखता तो सामने यों ही है कि वाह पानी पीला हो गया, पर पानी रंच भी पीला नहीं हुआ। सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो पानीका सत्त्व पानीमें है और रंगका सत्त्व रंगमें है। उससे और मोटी बात देखो। इस भींत पर यह पीला रंग पोत दिया, क्या भींतमें रंग चढ़ गया? नहीं। रंगमें रंग है और भींतमें भींत है। भींतका आश्रय पाकर, पानीका सम्बन्ध पाकर यह रंग पतला-पतला बनकर फैल गया है। तो भींत पीली है या रंग ही पीला है। भींत नहीं पीली है। यह तो जो है सो है, यह रंग ही पीला है। एक पदार्थ दूसरे पदार्थमें प्रवेश नहीं करता। तो देखो आत्मतत्त्वको। इसके न क्रोध है, न मान है, न कषाय है, न हर्ष है, न विषाद है। एक भी दोष इसके अन्दर नहीं है। ऐसे निजमें बसे हुए सहज ज्ञानस्वभावको जो ग्रहण कर लेता है वह पुरुष अंतरात्मा कहलाता है। 'बहिरातमता हेय जानि तजि अन्तर आतम हूजो।' इस बहिरात्मा को हेय जानकर अन्तरात्मा बनो। प्रगतिका चमत्कारका उपाय ज्ञानदृष्टि है। धर्म, ध्यान, समाधिके यत्न ये मोक्ष मार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो शुद्ध ज्ञानका उपयोग है।

एक सन्यासी था तो उसे समाधि लगाना बहुत उत्तम आता था। २४ घन्टेकी, १२ घन्टे की समाधि लगाता था। राजाके यहा पहुचा। राजा से कहा कि आप हमारी समाधि देखिए। राजाने कहा अच्छा दिखावो। कितने घन्टेकी? "बारह घन्टेकी। अच्छा लगावो साधु जी! आपकी समाधि ठीक बैठ जायेगी फिर आप जो मागेंगे सो मिलेगा। तो मनसे मागनेका निर्णय करनेमें देर नहीं लगती। तुरन्त निर्णय कर लेते हैं कि मैं यह चाहूगा।" क्या सोच लिया सो पीछे बतावेंगे। अब उसने समाधि ली। जब १२ घन्टेकी समाधि पूरी हो गई और जब आखें खुलीं तो तुरन्त कहता है-'लाओ राजन् काला घोड़ा।' उसने सारी समाधिमें काला घोड़ा दिलमें बसा रखा था कि यही मागेंगे।

'चित्त अस्थिर रहता हो तो उसका एक उपाय है कि चित्त स्थिर हो जाये। भींतमें एक निशान बना लो और उसको टकटकी लगाकर देखते रहो पलक नीचे न गिरे। जितनी देर तक बने करो, फिर करो। चाहे ऐसा करके

देख लो, चित्त एक ओर लगता है कि नहीं। तो चित्त एकाग्र करनेके धारणा आदि साधन हैं। पर विवेक तो मझा करना है ना, यह आत्मतत्त्व अपने आपके द्वारा अपने को जान जाता है। इस कल्याणके मर्मको न कोई दूसरा बना सकता है और न शास्त्रादिकसे जाना जा सकता है। शास्त्र आदि हमारे जाननेके साधन तो हैं, पर जानते हमी हैं। देखा होगा कि जब किसी चीजका ख्याल करते हैं तो किसी दूसरे का सिर नहीं मोड़ते हैं किन्तु अपने ही सिर पर दिमाग पर अंगुली लगाकर या जोर देकर कुछ अपनेमें सोचते हैं। कहा बल जगाया भूली हुई चीजको जानने के लिए, अपने में बल लगाया। इसी प्रकार अपने इस प्रभुको भूल गए तो इसके जाननेके लिए हमें अपने अन्तरात्मासे बल लेना चाहिए। भूल जावो सबको एक बार तो इस पुरुषार्थसे आनन्द मिलेगा।

भैया! जैसे बातें करने से पेट नहीं भरता किन्तु भोजन बनाकर अंगुलियों द्वारा पेटमें उतारनेसे पेट भरता है, इसी प्रकार केवल बातोंसे शुद्ध लाभ नहीं मिलता है। जो बात कही जा रही है उसको वाच्यमें अपने उपयोगमें लावो। यह परमात्मतत्त्व जगतके सर्वपदार्थोंमें इष्ट है। संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त मन होकर एक इस आत्मतत्त्वका ध्यान करो। यह देह देवालय है, मंदिर है, इस देहके अन्दरमें आत्मा बसता है, उस आत्माके अन्दरमें आ मस्वरूप बसता है। ऐसे इस देह द्वारा उस अन्दरमें बसते हुए अनन्त आनन्दमय, नित्य प्रकाशमान ज्ञानानन्दरस निर्भर इस आत्मतत्त्व का ज्ञानप्रकाशके द्वारा जो अनुभव करता है, उसकी ससारकी सब बेड़ियां खुल जाया करती हैं। ऐसे इस आत्मतत्त्वके अनुभवका आनन्द समतापरिणाममें स्थित योगीजनोंको ही मिलता है।

भैया! हम आप इस समय मलिन हैं शरीरसे जकडे हैं, कर्मोंसे जकड़े हैं। कहीं चैन नहीं है, पर ऐसी स्थितिमें भी हम अपनेको देखना चाहें, शुद्ध यथार्थरूपमें तो हम देख सकते हैं। सो जैसे गोबरके गड्ढेमें पड़ा हुआ पुरुष भी यदि स्वाद शक्करका लेता है तो आनन्द उसे शक्करका आता है इस गृहस्थावस्थामें रहकर भी यदि हम आपको दर्शन शुद्ध आत्मतत्त्वका होता है तो हम आप इस शुद्ध परमात्मतत्त्वका आनन्द पा सकते हैं। दृष्टि देनेकी जरूरत है। इधर ओर दृष्टि लगाना है, बाहरसे मुख मोड़ लेना है। अब हमारा कर्तव्य है कि बाहरसे तो मुख मोड़ लें और अपने अन्तरंग में दृष्टि लगा लें। और धीरे धीरे निकट भव्य पुरुष अपनी आत्मामें अपने उपयोगको जोड़ करता है तो उसे सर्वसिद्धि प्राप्त हो सकती है। २४ घंटेमें ५ मिनट तो सकल्प विकल्परहित उपयोग बनाना चाहिए, जिससे

इस शेष जीवनमें भी शान्ति रहे और परलोकमें भी शान्ति रहे।

इस ग्रन्थमें जिस शुद्ध आत्माका वर्णन किया गया है, वह शुद्ध आत्मज्ञान भावसे जाना जाता है। यह तो ठीक ही है, किन्तु समता-परिणाममें स्थित होनेसे इस शुद्ध आत्माका अनुभवात्मक बोध होता है। समतापरिणाममें रहने वाले योगियोंको कोई विलक्षण आनन्द उत्पन्न होता है। योगीन्द्र पुरुष जगलमें एकाकी रहते हुए जो प्रसन्न रहा करते हैं, वे इस शुद्ध आत्माके ध्यानके बलमें ही प्रसन्न रहते हैं। अपने आपके सम्बन्धमें इतना विशद बोध रहे कि यह मैं आत्मा ज्ञानमात्र समस्त पर-वस्तुओंसे न्यारा एक स्वरूप त्रैकालिक अनन्तशक्तिरूप हूं— ऐसा जब ध्यान बने तो उस पर कोई सकट नहीं रह सकता, क्योंकि सकट वास्तवमें किसी पर कुछ नहीं है।

भैया ! जो जितने अपने पर संकट बनाले, यह उसकी मर्जी है। व्यवहारमें जैसे कहा करते हैं कि हम पर बड़ा बोझ है, कभी गृहस्थी है, नया काम किया है। अरे एक शुद्ध ज्ञानस्वरूपको निहारो, कुछ भी बोझा नहीं है। कोई कहे वाह घर वालोंको आखिर हमें ही तो खिलाना पिलाना पड़ता है। घरवालोंके पुण्यका उदय है, इसलिए निमित्त बन जाते हो, खिलाते पिलाते कुछ नहीं हो।

एक गरीब ब्राह्मण था। वह १०-२५ घरोंसे आटे की चुकटी लेकर १० बजे आए, रोटी बनवाये और सब बच्चे खायें। एक दिन वह चुकटी मागने गया। रास्तेमें एक साधु मिला। साधुने कहा कि क्या कर रहे हो राम ? वह बोला आटा माग रहे हैं। वह बोला कि किस लिए ? बाल बच्चों को खिलाना पडता है। तो क्या तुम खिलाते हो बच्चोंको ? हा, ह, जब हम आटा मागकर लाते, घरमें रख देते, तब घरके बालबच्चे खाना खाते हैं। साधु बोला कि तुम्हें भ्रम है, तुम बच्चोंको नहीं खिलाते हो। तो क्या कर महाराज ! इसी जगहसे हमारे साथ जगल को चल दो, तुम किसीका विकल्प न करो। कितने दिनको महाराज ! कमसे कम १५ दिनको। वह १५ दिनके लिए चल दिया। जब १०-१२ बजे तक न आया आटा लेकर तो गांवमें ढिंढोरा लगा दिया। सो गांवके लोगोंने ढूंढते-ढूंढते किसी एक मसखरेने यह कह दिया कि उसको तो एक तेंदुआ पकड कर ले गया और खा डाला। यह खबर उसने घर वालोंको बताई। शाम तक जब न आया तो सब लोगोंको यह विश्वास हो गया कि उसे तेंदुवे ने खा लिया है, तो घरमें रोवा रोवी मच गई।

सब लोगोंने सोचा कि देखो बेचारा मागकर लाता था और सबको

खिलाता था, वह मर गया है, सो घर वाले भूखों मरेंगे। यही सोचकर जिसको जो कुछ देना था दिया, कौन रोज-रोज दे, इकट्ठा ६ माहका सामान सबने दे दिया। अनाज वालोंने २-४ बोरा अनाज दे दिया। घी वालों ने घी दे दिया, कपड़ा वालों ने कपड़ा दे दिया, शक्कर वालों ने शक्कर दे दिया। अब क्या था, १०-१२ दिन के अन्दर ही अन्दर सबके कपडे सिल गए, आरामसे रहने लगे। जब १५ दिन पूरे हो गए तो ब्राह्मण कहता है साधु महाराज से कि महाराज अब घर जाकर देख आयें ना। साधु ने कहा जावो, देखो, मगर छिपकर जाना घर। पहिले देख लेना कि घरमें क्या हो रहा है? फिर जाना। कौन जिन्दा है, कौन मर गया है सब देखभाल लेना, फिर घर जाना। अच्छा महाराज!

वह घरकी छत्त पर चढ़ गया और छिपकर देखता है कि वहां तो मगौडे, पकौड़ी, हलुवा, पूड़ी उड़ा रहे हैं और सब हंस रहे हैं। सब बढ़िया-बढ़िया कपडे पहिने हैं। वह देखकर दंग रह गया। सोचता है कि जब तक मैं घरमें था और फिक्र करता था तो सूखी रोटियां भी न मिलती थीं और अब ये सब गुलछर्रे मार रहे हैं। अब भाग्य उदयमें आ गया। अब तो बडे सुखी हो गए, सो खुशीके मारे एकदम वहींसे आगनमें कूद गया। जब एकदम कूद गया तो घर वालोंने सोचा कि यह भूत आ गया क्योंकि वह तो मर गया था, उनके तो मरनेकी खबर है, सो भूत आ गया। सो भूत को भगानेकी तरकीब क्या है? जानते हो। अधजला लूअर उठाकर वे घरके लोग उसे मारने दौडे तो वह छिप कर भाग गया। साधुके पास पहुंचा, बोला, महाराज! वहां तो बड़ा आनन्द सब मना रहे थे और जब मैं उनके पास पहुचा तो लूअर लेकर मुझे मारने दौडे। सो साधु बोला कि उनको आनन्द आता है तो तुम्हें कौन पूछे? जब वे दुःखमे थे तब तुम्हारा पूछ करते थे।

सो भैया! तुम्हारे ऊपर घरका भार नहीं है, तुम मानते हो कि मुझ पर घरका भार है। भार किसी पर नहीं है, पर अज्ञानभाव उत्पन्न कर रहे हैं, रागद्वेप भाव बना रहे हैं तो सकट हैं। बडे महात्मावों और साधुवोंकी बात क्या है कि चैतन्यमात्र अपने स्वरूपका उन्हें विश्वास है, इसलिए वे सम्यग्दृष्टी हो गए, विजयी हो गए, महात्मा हो गए और इन ससारी मोही प्राणियोंके इतनी कला नहीं आयी जिसके कारण ससारमें दुःखी हैं। तो इस शुद्ध आत्माका ज्ञान हो और कुछ करनी भी उत्तम हो, समतापरिणाममें अपना उपयोग लगावे तो इस आत्मामें शुद्ध जीवका बोध होता है। और उसी शुद्ध आत्माका बोध करके योगीन्द्रजन जगलमे अकेले अपने आपमे

प्रसन्न रहा करते हैं और यही स्थिति हम आपमें चाहिए तब तो अपना कल्याण हो सकता है।

भैया ! वह शुद्ध आत्मा मेरा शरण परमात्मा, मेरा परमपिता अन्यत्र कहीं न दीखेगा किन्तु सकल्प विकल्प त्यागकर केवल ज्ञानमात्र अपने आपका अनुभव न किया करें तो हमको शुद्ध आत्मा नजर आता है। अपने में ही अब एक चमत्कार अनुभवमें आ जाये कि ससारके सारे संकट मुझसे दूर हैं, सब मायामय है, मायामयका आदर करनेमें सारे सकट हो रहे हैं और यह सब है पुण्यका फल। यह चाहने से पुण्य नहीं बनता किन्तु पुण्य की चाह न करे, परिणाम निर्मल रखे तो उसे पुण्य बंध होता है। यह सब पुण्यका ही ठाठ है, विनाशीक है। इसमे जो रमना है उसको शुद्धआत्माके दर्शन नहीं होते हैं। अपने आपमे वसा हुआ शुद्ध आत्मा अपनेमें बसा है तो इसके वसने पर यह इन्द्रियसमूह वस जाता है और इसके उजड़ने पर ये सब इन्द्रिया उजड जाती हैं। वही तो एक आत्मा है, निज परमात्मतत्त्व है। उसकी दृष्टिसे चिगे कि ससारमे सर्वत्र क्लेश ही क्लेश होते हैं।

इस शुद्ध आत्माके केवलज्ञानकी कला प्रकट होती है। न इसका बंधन है, न इसमे ससार है, न सुख दुःख उत्पन्न होता है। यह तो मात्र अपने ज्ञानस्वभावमे स्थित रहता है। मेरा भला करने वाला परमपिता रक्षक अपने आपमें अवश्य मौजूद है, किन्तु हम हीच सके दर्शन नहीं करना चाहते। इसका दर्शन बाह्यके सकल्प विकल्प त्याग करने से स्वयमेव होते हैं। जिसे इसका दर्शन हो गया, उसका निकट ससार है, वह शीघ्र ही निर्विकल्प स्थिति को प्राप्त होता है।

एक घरमें स्त्रीने पतिसे कहा कि देखो आजके समयमें सब लोग देश रक्षा के लिए युद्ध करने जा रहे हैं तो तुम भी मिलिट्रीमें शामिल हो जावो। तो घर वाला कहता है कि यह तो नहीं हो सकता है। क्यों ? अरे युद्ध करने जायेगे तो प्राण नष्ट हो जायेंगे। तो उस स्त्री ने चक्कीमें चने डाल कर चने को दलकर बताया कि देखो जैसे इस चक्कीमे चने दले हैं तो उनमे से कोई चना समूचा भी निकल आय है। जातेमे चनेको दलो तो कुछ देवली निकले कुछ भूसी हो गए और कुछ समूचे निकले। तो स्त्री कहती है कि देखो ये चने समूचे निकल आये हैं, तो इसी प्रकार युद्धमें सभी नहीं मरा करते हैं, कोई वचा भी करते हैं। तो पुरुष बोला कि जो इसमें चूर हो गये, हम उनमे से हैं और जो बचे है उनमे मेरी गिनती नहीं है। यदि कोई अपने को प्रारम्भसे ही ऐसा माने कि जो दुःखी हो, चिंतित हो, अरक्षित हो वही मैं हू, प्रभु स्वरूप मै नहीं हू—ऐसा ही कोई निरखता रहे,

चैतन्यस्वभावकी प्रतीति न रखे तो इसकी चिकित्सा कौन दूसरा करेगा ?

भैया ! किसी भी जीव पर कोई सकट नहीं है। जवान, बूढा, बालक कोई भी ले आवो, दु:खी नहीं है। बाह्यविषयक विकल्प सबने बनाए हैं और उन विषयोंके एकांकी बनाकर ही सब अपने आप दु:खी हो रहे हैं। एक खटिया पर पुरुष स्त्री दोनों पडे थे। दोनोंमे गप्पे हो रही थीं। स्त्रीने पूछा क्यों जी अगर एक बच्चा हो जाये तो वह कहां पड़ेगा ? तो वह थोड़ा खिसक कर बोला इस बीचमे पडेगा और अगर दूसरा हो गया तो इस बार वह ऐसा खिसका कि नीचे गिर पडा। कभी ऐसा भी हो जाता है कि थोड़ा दूर से गिरने पर भी चोट आ जाती है। तो गिरनेसे उसका पैर टूट गया। फिर उठनेके बाद स्त्री ने चर्चा की कि अगर तीसरा होगा तो कहां पड़ेगा ? कहा छोडो, कल्पना करनेमें तो टूटा पैर, होने पर तो न जाने क्या टूटे ? तो सब कल्पना ही करके दु:खी हैं। एक भी जीवको कोई दु:ख हो तो बतलावो ? मगर कल्पना किए बिना रह कौन सकता है ? लखपति करोड़पतियोंको देखकर मनमें यह तरंग उठाते हैं कि मुझे भी ऐसा ही होना चाहिए, तब तो मेरी इज्जत हो। करोडपति अरबपतियोंको देखकर सोचते हैं कि मुझे ऐसा होना चाहिए तब तो मेरी इज्जत हो। मान लो जो बडे धनी हैं, जिनके लिए मात्सर्य करने के लिए कोई दूसरा आदर्श नहीं नजर आता, सर्वोत्कृष्ट धनी हो, तो वे अपने धनकी रक्षाके लिए ही बडे चिंतित रहते हैं।

बनारसमे एक वृद्ध पडित थे। सबसे अधिक बुद्धिमान् थे, पर वे इतने बूढे होने पर भी पुस्तकों को ही देखा करें। लोग कहते कि पडितजी आप वृद्ध हो गए हैं। आप सबसे अधिक बुद्धिमान् माने जाते हैं, सब लोग आपकी इज्जत करते हैं फिर भी आप रात दिन पढते रहते हैं। आपकी अवस्था वृद्ध हो गई। अब तो आपको आरामसे रहना चाहिए। तो पडित जी बोलते हैं कि यदि किसी समय हमसे किसीने शास्त्रार्थ छेड़ दिया और हम हार गये तो कुएमे गिरना ही पडेगा और मेरी कुछ गति न होगी। एक बार ऐसा ही हुआ। एक जवान पडितसे शास्त्रार्थ के लिए दिन निश्चित हो गया। उसमें वे हार गए तो दूसरे दिन लोगोंने उन्हें जिन्दा न पाया।

भैया ! खुदमें ही कल्पनाएँ बनाकर सब दु:खी हो रहे हैं। साधुवोंमें सन्यासियोंमें महात्मावोंमें और है क्या कला, सो बतलावो। भीतरके उजेले को उन्होंने निरखा और परमानन्द उनके उत्पन्न हुआ। उस आनन्दके कारण ही उनके कर्म झड़ जाते हैं। ग्रन्थोंमें जिस शुद्ध आत्माकी चर्चा की गई है उस शुद्ध आत्माका स्वरूप मात्र प्रतिभास है। इस आत्माको पिण्ड [illegible] दृष्टिसे मत निहारो। इसमें आकार प्रकार नहीं दीखेगा। यह आत्मा

कितना लम्बा चौड़ा है इस रूप इसे न देखो। यह क्रोधवान् है, कषायवान शांत है—इस प्रकारसे न देखो। इसे केवल एक ज्ञान उजेले है, के रूपमें देखो। जो ज्ञानज्योतिमात्र है। एतावन्मात्र मैं हू- ऐसा एक ज्ञान प्रकाशके रूपमें अपनेको देखो तो इस आत्माका ग्रहण हो सकता है। वश ऐसे ज्ञान सम्यक्त्वके उपयोगको जो जान गया, उसे कहते हैं शुद्ध आत्मा। उस शुद्ध आत्माको देखो। सबकी स्थितियां देखकर मरण रोग बुढ़ापा देख कर तू भय मत कर। तू शुद्ध आत्मतत्त्व है। केवल अपनी स्वरूप सत्ता मात्र है, उसको ही ग्रहण कर। तू किसी भी प्रकारसे परवस्तुवोंका परिणमन तककर खेद मत कर। परवस्तुवोंके बारेमें कुछ न विचारो।

देखो तो अज्ञानकी महिमा, भिखारी जन अपनेको उतने ही रूपमें तक कर अपनेमें गर्व किया करते हैं, कुछ मांगने की अच्छी कला आ जाय और ५ रुपये के पैसे मिल जायें तो भिखारियोंके बीचमें वह भिखारी गर्वके साथ बैठता है। मैं बुद्धिमान् हू। मैंने बड़े-बड़े लोगोंको चकमा दिया है। मैं पैसा कमानेकी, मांगनेकी विशेष कला जानता हू - इस तरहसे भिखारियों के बीचमें वह भिखारी गर्व किया करता है। धनीजन धनिकोंके बीच बैठकर अपने धन पर गर्व किया करते हैं। प्रत्येक जीव अपने बारेमें कुछ न कुछ विश्वास लिए हुए है। मैं गोरा हू, मैं सांवला हू, मैं अमुक जातिका हू, मैं अमुक कुलका हू, मैं अमुक पोजीशन का हू, ब्राह्मण हू, वैश्य हू, जवान हू, वृद्ध हू, रूपवान् हू, साधु हू, सन्यासी हू आदिरूपसे अपने आपमें विश्वास करते हैं। मगर शुद्धनयसे देखा गया यह आत्मा कभी इन रूप नहीं है। वह तो केवल निजज्ञान प्रकाशमात्र है।

केवलज्ञान प्रकाशमात्रके रूपमें निरखा गया यह आत्मा शुद्धआत्मा है। इस रहस्यको जो जानता है उसे योगी कहते हैं। जिनको इस रहस्यका पता नहीं है वे किसी न किसी रूप किसी पर्यायवान स्वरूप अपने को निर्णय करके मिथ्यादृष्टी रहते हैं। यह आत्मा न भला है, न बुरा है, न पुण्यरूप है, न पापरूप है, न सुखरूप है, न दुःखरूप है। किन्तु शुद्ध ज्ञानस्वभावमात्र है। शुद्धका अर्थ है सबसे निराला केवल अपनी सत्तामात्र यह शुद्धआत्मा वास्तविक तीर्थ है। अन्य तीर्थस्थानोंपर जानेका प्रयोजन इस निज तीर्थका ज्ञान करना है। काम तो किया और प्रयोजन छोड़ दिया तो उसे कौन बुद्धिमान कहेगा? किसी सेठके यहा मकान बन रहा है और बहुतसे मजदूर उसमें काम कर रहे हैं तो एक भोला भाला मजदूर गया तो उन सब मजदूरों से अधिक काम करने लगा, किन्तु मालिकके रजिस्टरमें अपना नाम न लिखाया। काम सबसे ज्यादा किया। जब हफ्तेके पैसे बटने लगे तो सबको

तो मिले, पर उसे न मिले। उसने कहा कि काम तो मैंने सबसे अधिक किया पर मुझे कुछ नहीं मिला। मालिक ने रजिस्टरमें उसका नाम देखा तो नाम ही न था। मालिक ने कहा कि तुम्हारा तो रजिस्टरमें नाम ही नहीं है, जावो हटो। देखो काम तो इतना किया, पर मिला कुछ नहीं। अरे तो काम करनेका जो विधान है उसपर तो दृष्टिपात नहीं किया। इसी प्रकार तीर्थ जानेका प्रयोजन है कि निश्चयतीर्थकी खबर मिल जाय, जो तुम्हें तार सकती है। और उस निश्चयकी खबर न ली तो बाह्यक्षेत्रके तीर्थ पर जाने से बतावो कौनसा मोक्षमार्ग तुमने पाया ?

यह शुद्ध आत्मा ही तीर्थ है। जिसके ध्यानके प्रतापसे ये समस्त कर्म मल ध्वस्त हो जाते हैं। एक शुद्ध आत्माके ज्ञान लेने पर सर्व विश्व जान लिया जाता है, ऐसा यह शुद्धआत्मतत्त्व कारणरूप है, तो इसका नाम कारण समयसार है। इस शुद्ध आत्मतत्त्वका आश्रय करनेसे, अभेद उपासना करने से समस्त उपाधि और औपाधिक भाव ध्वस्त हो जाते हैं। इस कारण यह शुद्धआत्मा ही परमपिता कारणसमयसार है और अनुरूप जो शुद्धपरिणमन चलता है वह सब कार्यसमयसार है।

भैया! हम वदना करते हैं णमो अरहंताणं और बोलते समय यह विश्वास बनाए हैं कि जो अरहंत हैं सो मैं हू। जो अपनी शक्तिका अंदाज नहीं करते हैं वे णमो अरहंताणं की वदना करते हैं तो वह रस्मसी अदाकी जाती है। णमोसिद्धाणं बोलने पर अपने आपमें सिद्धस्वरूप हूं— ऐसा विश्वास आना चाहिए था, पर उसका ख्याल भी न किया तो एक रस्म अदा किया। ये पंचपरमेष्ठीस्वरूप यह मैं आत्मा हू। ये परमेष्ठी स्वयं अपना अधिकार लेकर नहीं पैदा हुए। जैसे हम है तैसे ही ये सब थे। पर इनके ज्ञानभाव जागृत हुआ और अपने ज्ञानस्वरूपमे ध्यान दिया तो सर्व उपद्रवों से पार हो गए। इस कारण वे पूज्य हैं। पर जैसे वे हैं तैसा ही मेरा स्वरूप है—ऐसा अपने आपमें विश्वास रखना चाहिए। जो यह शुद्धआत्मतत्त्व है इसके ध्यानके प्रतापसे भव-भवके बाधे हुए कर्म क्षण भरमें ध्वस्त हो जाते हैं।

इस शुद्ध आत्माका ध्यान करने पर शाश्वत अविचल आनन्द प्रकट होता है। सो सर्व उपाय करके अपने इस चित्तको निर्मल बनओ। निर्मल आसन पर यह शुद्ध आत्मतत्त्व विराजमान रह सकेगा। तो तुम इस शुद्ध आत्माका ज्ञान करो और साथ ही कुछ ऐसा उद्यम करो कि कुछ क्षण अपने उपयोग को ऐसा बनावो कि इसमें कोई दूसरा पदार्थ स्थित न रहे। खाली बनावो तो उस शून्य हृदयको देखकर भगवान् विराजमान हो जायेगा। भगवान् बड़ा कृपालु है। वह देखेगा कि इस आसन पर क्रोध मान माया

लोभ—ये बच्चे खेल रहे हैं, गुण्डे ऊधम मचा रहे हैं, इनको देखकर वह भगवान् लौट जायेगा।

यह प्रभु जहां आसन सूना होगा वहीं विराजमान होता है। ऐसा रागादिकसे रहित, विषयोंकी आसक्तिसे रहित अपना चित्त करो और विश्वास रखो कि कोई दूसरा मेरे लिए शरण नहीं है। मेरा मात्र मैं ही हू। सबसे निर्लेप होकर परमविश्राम पाये तो यह पुरुष आनन्दमग्न होकर इस आनन्दभूमि आसन पर आ जायेगा। इसके प्रतापसे ही संकट टलते हैं। इसका ही तीन आत्मावोंके वर्णन के बहानेसे प्रतिपादन किया है कि तुम सीधा एक इस शुद्ध आत्मतत्त्वको निरख लो, जिसके देखने पर सारे सकट समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार यह परमात्मप्रकाशका प्रथम महाधिकार सम्पूर्ण हुआ।

❀ परमात्मप्रकाश प्रवचन चतुर्थ भाग समाप्त ❀

श्रीसहजानन्द शास्त्रमाला

की

प्रबंधकारिणी समिति के सदस्य